THE BOOK WAS DRENCHED

TEXT PROBLEM WITHIN THE BOOK ONLY

Tighit Binding Book

UNIVERSAL LIBRARY
OU_178290
UNIVERSAL LIBRARY

प्रकाशक—
"पुस्तक-मन्दिर,"
जयपुर

द्वितीय संस्करण
सन् १९४२
मूल्य १॥)

मुद्रक :—
बा० महीलाल गुप्त,
गुप्ता प्रिंटिंग वर्क्स, मथुरा।

हैण्ड्स अप्

हास्यरस की जो थोड़ी सी पुस्तकें हिन्दी में उपलब्ध हैं उनमें प्रस्तुत पुस्तक 'कुकड़ूँ कूँ' का स्वर बड़ा तीखा और मादक है। इसके लेखक हास्यरस के अच्छे लेखक माने जाते हैं। उनकी 'गड़बड़ रामायण' और 'सिनेमा पुराण' नामक स्फुट रचनायें काफी पसन्द की जा चुकी हैं। इन दोनों का भी कुछ भाग 'कुकड़ूँ कूँ' में संगृहीत है। सभी रचनायें मनोरंजक और 'मोजूँ' हैं। ससुराल की धाँधली मजेदार है, पर 'बीबी का खत' उतना रोचक नहीं है जितना होना चाहिये था। 'उनकी मुलाकात' में 'सिनेमा पुराण' का कुछ भाग जबर्दस्ती रख दिया गया है वह स्वतंत्र होना चाहिये था। 'अनोखी सभा' की रिपोर्ट अनोखी है और सभापति का भाषण अनोखा भी है और चोखा भी। 'खेदू सरदार' और 'वे' दोनों ही स्केच अच्छे उतरे हैं और व्यंग्यपूर्ण हैं। 'चौपट पुराण' सर्वाधिक सुन्दर और मौलिक चीज मालूम पड़ी। पुस्तक में गुदगुदी पैदा करने वाला हास्य है। अनमोल बोल अच्छे हैं।

काशी ता० ६-१२-४१ दैनिक 'आज'

अटेंशन

जमाने की रफ्तार के साथ अगर हम भी बहने लग जायँ तब तो हमारे कहने के लिए भी बहुत सी बातें हैं; जैसे—दुनिया में अगर कोई विद्वान् है तो वह हम हैं; विधाता ने सब से अधिक प्रतिभा यदि किसी को दी है तो हम को दी है तथा हिन्दी में अच्छा लेखक और कवि हमारे सिवा दूसरा और है ही कौन? आदि-आदि। परन्तु प्रथम तो अभी ऐसे लोगों का अभाव नहीं हो गया है जिन्हें पक्ष में मिला कर अपनी योग्यता का ढिंढोरा न पिटवाया जा सके; दूसरे ये सब बातें भी प्रायः वही हैं जिन्हें आप बहुत पहले से जानते हैं। अतः अच्छा यही होगा कि अपनी प्रशंसा करने में समय नष्ट न कर हम उन्हीं बातों को संक्षेप में बक जायँ जो इस पुस्तक से सम्बन्ध रखती है।

हिन्दी में अब ऐसी पुस्तकों की कमी नहीं है; जिन्हें आप स्वयं तो पढ़ें ही; कहीं मजबूत जिल्द मढ़ाकर सुरक्षित छोड़ जायँ तो नाती-पोते भी लाभ उठावें। परन्तु खेद है कि सिद्धान्त सुन्दर होते हुए भी हम इस सिद्धान्त के विरोधी हैं। हम तो चाहते हैं कि जो पुस्तक आपके लिए लिखी गई है उसे केवल आप ही पढ़ें। इससे भी बढ़ कर हम यह गवारा कर सकते हैं कि आपके इष्ट-मित्र एवं समकालीन सगे-सम्बन्धी लाभ उठा लें। परन्तु जहाँ

आपके नाती-पोतों का प्रश्न आयेगा वहाँ हम यही सलाह देंगे कि उन्हें हमारे नाती-पोतों के लिये छोड़ दीजिये। दुनिया में लिखने पढ़ने वाले सदा रहे हैं और अभी रहेंगे।

इस प्रकार यह तो हुई सब से बड़ी बात । अन्य छोटी-छोटी बातें इस प्रकार हैं:—

१—हमारी अन्य पुस्तकों की भाँति इस पुस्तक में भी ज्ञान-विज्ञान का शिकार ही खेलने की चेष्टा की गई है।

२—पुस्तक हास्य-रस की अवश्य प्रमाणित होगी; क्योंकि हमारे जैसे लेखक ने हास्य-रस लिखने की चेष्टा की है यही हास्य-रस से क्या कम है ?

३—पुस्तक का नाम 'कुकड़ूँ कूँ' इस लिए रखा गया है कि बिना कोई नाम दिये हम पुस्तक बाजार में ला नहीं सकते थे।

४—उपर्युक्त सभी बातें पुस्तक की भूमिका में न समझी जानी चाहिये; क्योंकि भूमिका तो हमारी यह पुस्तक ही है। अभी तो लोग हम से बड़ी-बड़ी आशायें लगाये हैं। अतः पुस्तक तो फिर कभी लिखेंगे जब पाठकों का प्रोत्साहन मिलेगा और समय का अभाव न होगा तो।

'कुटिलेश'

चाभी

विषय		पृष्ठ
१.	ससुराल की धांधली	३
२.	बीबी का खत	११
३.	उनकी मुलाकात	१९
४.	अनोखी सभा	३२
५.	खेदू सरदार	४१
६.	वे !	५४
७.	चौपट-पुराण	६२
८.	ठिठोली	७६
क.	अनमोल बोल	७७
ख.	सागर पार	८१
ग.	अप-टू-डेट साखी	८२
घ.	दिव्य-दोहावली	८४
ङ.	गड़बड़ रामायण	८७
च.	मधुशाला	८९
छ.	भाभी महिमा	९०
ज.	गृहस्थ-गान	९४
झ.	मुझे मालूम न था, कहीं न कहीं	९५

कुकडूँ कूँ

ससुराल की धाँधली

१

एक तरफ ऐसे लोग हैं जो बाप-दादों का मकान छोड़कर ससुराल में जा बसे। दूसरी तरफ हमारे मित्र पं० गीताकिशोर शास्त्री जैसे महापुरुष हैं जिन्हें ससुराल के नाम ही से चिढ़ है। 'रात ही छोटी है कि चोर ही गंवार हैं', यह आप तब तक नहीं जान सकते जब तक पंडितजी अपने ससुराल न जाने के रहस्य का भण्डाफोड़ न करें।

पता नहीं बचपन में किसी बड़े-बूढ़े की सेवा की थी अथवा नहीं; परन्तु घर पहुँच कर मैंने यह जरूर देखा था वे मेवा खा रहे थे। एक सेर भर के कटोरे में लगभग आधा सेर किशमिश, पिस्ता, काजू, बादाम, अखरोट और न जाने क्या-क्या रखा हुआ था और दो-दो दाने अपने मुंह की कन्दरा में डाल-डाल कर जुगाली कर रहे थे। पास ही एक सेब, दो सन्तरे तथा तीन नासपातियाँ भी रखी थीं; जिन्हें देख कर यह आसानी से समझा जा सकता था कि पूर्व जन्म में भी उनके कर्म बुरे नहीं थे; अन्यथा आज फल खाकर जीवन सफल न कर सकते थे।

मैं घर से बिना जल-पान किये निकला था, अतः यह तो बात मानी हुई थी कि उनकी, ऐसी सुन्दर' जल-पान-सामग्री' देख कर मुंह में पानी आ गया था, परन्तु इतना अब भी स्वीकार करूंगा कि मेरी नीयत बिलकुल साफ थी। परन्तु उनकी नीयत को क्या कहा जाय? जैसे ही मैंने पैर छूने के उद्देश्य से अपना हाथ बढ़ाया उन्होंने शायद समझ लिया कि कोई उचक्का है और मेरे मेवे पर हाथ साफ करना चाहता है। अतः कलाई पकड़

ली। बचपन में बहुत मलाई खाई थी, परन्तु अफसोस! आज उनसे कलाई न छुड़ा सका।

सो कभी-कभी ऐसा होता है। बल होते हुए भी हमें केवल श्रद्धा के डर से दूसरों से हार स्वीकार कर लेनी पड़ती है। आज मैं भी इसी श्रद्धा का शिकार हो गया। मल्ल-युद्ध के सभी भाव हृदय में आ चुके थे; परन्तु मैंने उनसे केवल यही कहा कि, 'भगवन् मुझे मेवा न चाहिये केवल आशीर्वाद दीजिये।'

वे अब पहिचान चुके थे। मेवा न देकर केवल आशीर्वाद ही देना पड़ेगा, यह जानकर खुश तो हो ही गये थे; खीसें भी निकाल दीं और कहने लगे—"आओ बैठो। कैसे आये?"

—'आज मैं ससुराल जा रहा हूँ। अतः सोचा कि कहीं घर आकर आपको वापस न लौटना पड़े, इसलिये सूचित किये जाऊँ।'

—'हूं।' उन्होंने गम्भीर मुद्रा बनाकर कहा। 'फागुन में ससुराल जा रहे हो?'

—'क्या कोई कलंक का काम है?' मैंने जिज्ञासा की इच्छा से पूछा।

वे खिन्न हो गये। न जाने कौन सा दिल का घाव हरा

हो आया। एक लम्बी साँस लेकर बोले—'खैर जाओ। परन्तु फागुन में ससुराल जाना खतरे से खाली नहीं है, इतना नोट कर लेना।'

—'कोई अनुभव हैं ?' मैंने फिर पूछा। 'हो तो जरा बताइये'।

—'अनुभव ? अनुभव अपना ही है। लेकिन बताऊँगा पीछे पहले यह जलपान समाप्त करलो।' वे बोले।

—कोई आपत्ति नहीं है, कहते हुए मैंने भी मेवे पर हाथ साफ करना शुरू किया। प्रत्येक काम का अन्त होता है—जल-पान भी समाप्त हो गया। निश्चिन्त होकर बैठने पर उन्होंने अपनी राम कहानी शुरू की।

"आज से लगभग १४ वर्ष पहले की बात है। यही फागुन का महीना था। तुम्हारी यही भाभी बाल-बच्चों के साथ अपने पिता के घर पर थीं और मैं इसी घर पर 'छोटी साली पर जीजा दिवाने हुए" गाने से मन बहलाया करता था। सचमुच मेरी छोटी साली रूप-लावण्य में एक ही थी और मैं उसको देखने के लिये दीवाना भी रहा करता था।

"हाँ, तो जब होली के तीन दिन रह गये तो मुझे एक बन्द लिफाफा मिला। पते की लिखावट से यह तो पता पहिले ही लग गया कि पत्र ससुराल से आया है परन्तु

भीतर से इस बात का भी पता लगा कि मुझे बुलाया भी गया है। जाने की इच्छा तो थी ही, पत्र के नीचे जब छोटी साली के हस्ताक्षर में यह वाक्य पढ़ा कि, 'जीजा यदि सच-मुच आप मुझे चाहते हैं, तो पत्र पाते ही रवाना हो जाना' तो मैंने तनिक भी विलम्ब करना मुनासिब नहीं समझा। कपड़े-लत्ते ठीक करके मैं पहली ही ट्रेन से ससुराल के लिये रवाना हुआ और ६ बजते-बजते वहाँ पहुंच गया।

"एक दामाद की ससुराल में जैसी खातिर होनी चाहिये सचमुच मेरी भी वैसी ही खातिर हुई। बड़ा आनन्द आया। परन्तु रात के १० बजे जब खा-पी कर मैं बताये हुये कमरे में सोने के लिए घुसा तो शायद मेरे साथ मेरे बुरे ग्रह भी प्रवेश कर गये।" पण्डितजी का गला इस समय भर आया था। उन्होंने कहानी यहीं पर रोक दी।

—'आगे क्या हुआ?' मैंने पण्डितजी को कोंचते हुए पूछा।

"आगे यह हुआ कि मुझे विश्वास था कि मेरे सोने के कमरे में तुम्हारी भाभी भी आयेंगी। परन्तु चार बजे सबेरे तक मैं कराहता रहा और वे तो क्या कोई भूत-प्रेत भी न झाँका।"

—"आप तो अपने को दर्शन-शास्त्र का विद्वान् समझते हैं। क्या उस दिन आप भाभी के भी दर्शन न कर सके?" मैंने कहानी से दिलचस्पी लेते हुए पूछा।

"भाड़ में जाय दर्शन-शास्त्र !' उन्होंने रुखाई से फिर कहना शुरू किया—"उनके घर वापस आने पर तो यह पता चला कि उस दिन उन्हें बिच्छू ने डंक मारा था अतः वे अलग एक कमरे में कराह रही थीं परन्तु इधर पाँच बजे सबेरे मेरे ऊपर क्या बीती, इसी के लिए आज १४ वर्ष की पुरानी कहानी को फिर दोहरा रहा हूँ।"

—'अच्छा, दोहराइये।'

"आगे की दुर्घटना इस प्रकार है कि मैं रात भर का जागा तो था ही अतः पांच बजने के समय मेरी आँखें नींद से भारी हो रहीं थीं। मैं एक हल्की झपकी लेने की चेष्टा कर रहा था कि सहसा मेरे कानों में जो आवाज आई उससे पता चला कि शायद कोई कमरे में झाड़ू देने आया है।

"मैंने चादर के भीतर से मुँह अधखुला करते हुए झाड़ू देने वाली को देखना चाहा। तुम्हारी भाभी यहाँ से गुलाबी साड़ी पहिन कर गईं थीं अतः गुलाबी साडी से ढकी लड़की को देखकर मुझे इसमें तनिक भी सन्देह न रहा कि वे तुम्हारी भाभी नहीं है। मैं नींद का मोह छोड़कर चारपाई से कूद पड़ा और चट से उनको गोद में उठा लिया। वे चीख पड़ीं और आवाज परखने पर मुझे पता लगा कि मैं भूल कर गया हूँ। बहिन की साड़ी पहिने मेरी वह छोटी साली झाड़ू दे रही थी।"

—'तब ?' मैंने उत्सुकता से प्रश्न किया।

—"तब न पूछो। ऐसा जान पड़ा कि सैकड़ों घड़े पानी मेरे ऊपर एक साथ पड़ गया ' चीखने की आवाज से मैं तो परेशान हो ही रहा था; उधर घर के भीतर भी तहलका मच गया। मुझे यह तो मालूम था कि भाई की मुसीबत में भाई दौड़ता है परन्तु इस बात का पता उसी दिन चला कि बहिन की मुसीबत में बहिन भी दौड़ती है। मेरे कमरे में सबसे पहले तुम्हारी भाभी आईं और मुझ से बोलीं—'तुम दूसरे के घर में भी भले-मानुस की तरह नहीं रह सकते"

"मैं उनसे अपनी भूल का विधवत् वर्णन करना चाहता था। यह भी सम्भव था कि कान पकड़कर भविष्य में ऐसी भूल करने की प्रतिज्ञा भी करता परन्तु अफसोस! मुझे अवसर न मिला। घर के छोटे-बड़े सभी मेरे कमरे में आकर जमा होने लगे। मैं घबड़ा उठा। बिना किसी से कुछ कहे सुने ही पीछे के दरवाजे से ऐसा भागा कि इस घर में ही आकर दम लिया।

"दो मास बाद तुम्हारी भाभी को मेरा साला छोड़ गया था। मैं घर पर नहीं था इसलिये भेंट नहीं हुई। हाँ, तब से आज तक मैं ससुराल अलबत्ता नहीं गया। चौदह वर्ष बीत गये हैं परन्तु फागुन आते ही मालूम

होता है, कल ही ये सब बातें हुई हैं। कई बार बुलाया गया परन्तु ससुराल कौन-सा मुँह लेकर जाऊँ यह समझ में नहीं आ रहा है ?

—"तो इसमें बेचारे फागुन का क्या दोष ?"

"हाँ फागुन का दोष नहीं है; परन्तु उस ससुराल का दोष तो है ही, जहाँ अन्धेर खाता चल रहा है, न्याय दुहाई दे रहा है और स्वार्थ के आगे अपने दामाद की भी सुनवाई नहीं है।"

—"अरे ! अरे ! यह आप क्या कह रहे हैं ?"

—"वही जो कहना चाहिये। एक लड़की अपनी खुशी से भेंट की जाती है; अथवा यह कह लो कि जबर-दस्ती हमारे गले मढ़ दी जाती है। परन्तु यदि दूसरी लड़की का हाथ अपनी इच्छा से अथवा भूल से मैंने पकड़ ही लिया तो कौन बड़े कलंक का काम हो गया ?"

इच्छा होते हुए भी मैंने पण्डितजी को कुछ समझाना उचित नहीं समझा। आशीर्वाद लेकर चला आया और ईश्वर का नाम लेकर उसी दिन ससुराल चला गया। मुझे प्रसन्नता है कि मैं किसी दुर्घटना का शिकार नहीं हुआ। पण्डित गीताकिशोर शास्त्री की जैसी कोई भूल मुझसे नहीं हुई अतः मेरी राय है कि फागुन तो क्या जब तबियत हो ससुराल अवश्य जाना चाहिये।

बीबी का खत

२

मियाँ ने बीबी से कहा था कि हम तुम मिल कर प्रेम-नगर बसायेंगे। लेकिन प्रेम-नगर की स्कीम आइस्क्रीम में छोड़ कर वे परदेश भागे और उस बेचारी को ऐसा भूले कि महीनों बीत जाने पर भी एक खत तक न लिखा। 'बीबी का खत' मियाँ से इन बातों का कारण जानना चाहता है।

मेरे प्रियतम;

आज भी आपका पत्र न मिला। अन्त में, वही हुआ, जो मैंने प्रारम्भ में ही कहा था। घर से पाँव निकालते ही दीन-दुनियाँ, सभी आपके हृदय से छू-मन्तर हो गयीं। कहाँ तो हर आठवें दिन पत्र लिख रहे थे, और कहां आठ आठ अट्ठासी, दो महीने अट्ठाइस दिन बीत गये और आपके कर-कमल कागज पर न सरके! क्या यही है प्रेम, और यही है, प्रेमनगर बसाने की स्कीम ?

खैर! आप तो वहां चले गये, लेकिन क्या आपको कभी इस बात का भी अनुभव होता है कि जहां प्रेम की परेग ठोंक आया हूँ, उस दीवाल का क्या हाल होगा! अभी दो महीने अट्ठाइस ही दिन हुए हैं, लेकिन मेरी समझ में तो इतने ही दिनों में कितने युग हो गये। ऐसा जान पड़ता है कि उम्र ही समाप्त हो गयी। जब आप यहां रहते थे तभी दिन पहाड़-सा कटता था, परन्तु यह तो विश्वास था कि रात नदी की तरह बह जायेगी; और

अब तो रात भी पहाड़ ही है, तब दिन क्या हो गया होगा, कौन बताये ! जिस दिन से गये, रोते-रोते दोनों आंखें सावन-भादों बन गयीं और आंसुओं का प्रवाह वैसे ही जारी रहता है, जैसे बाढ़ में गङ्गा नदी। न जाने, शरीर में कौन रोग लग गया है कि न दिन चैन न रात। इन जाड़े के दिनों में भी इच्छा होती है कि कपड़े खोल कर रख दूँ। एक तो ऐसे ही चमड़ा हाड़ों के ऊपर रह गया है, उस पर हाड़ों के भीतर जैसे कोई भट्टी सुलगा रहा हो ! बिस्तर पर कभी लेट गयी तब तो और भी तपिस बढ़ जाती है। डर लगा रहता है कि कहीं सुलग न जाऊँ और मेरे साथ आपकी घर-गृहस्थी भी न जल जाय, इसलिये जाग कर ही आजकल सबेरा कर देती हूँ।

मैं सोचती हूँ कि आखिर आप इतने निष्ठुर हो कैसे गये ? अपनी जिस रानी के लिये घर रहने पर दिन में पचास बार बहाने निकाल-निकाल कर दरवाजे से भीतर आते थे; बड़े-बूढ़ों की आंखों धूल झोंककर कभी शरीर से शरीर रगड़ कर निकलते थे, कभी धोती का खूँट पकड़ कर खींच लेते थे और कभी पैर से पैरों की उङ्गलियां कुचल डालते थे, उसी को आज इस तरह कैसे भूले ? इस तरह तो महाजन को कर्जा, कपड़ा देनेवालों को दर्जी और एहसान करने वालों को शायद बङ्गाली बनर्जी और चटर्जी भी न भूलते होंगे।

ला.ज भूलने पर भी याद आ ही जाती है आपके हृदय की वह कोमलता, जो नदी-नाव के संयोग के समय थी। सो आपके घर पहली बार आयी थी। मुझे प्रीति की रीति का कोई ज्ञान न था। परन्तु वह आप ही हैं, जिन्होंने मुझे प्रेम के थप्पड़ों से ठोंक-पीट कर वैद्यराज बनाया। मधुर-मिलन की प्रथम रात्रि की बात को ही लीजिये। आप आशा कर रहे थे कि मैं घर आयी हूँ तो फूलों से चुन-चुन कर बिछायी सेज मिलेगी, परन्तु याद होगा, आपको मिला था शयनागार में बिना बिस्तर का टूटा तख्त। फिर भी आपने क्रोध नहीं किया और जब मैं ठेल-ठाल कर आपके सामने लायी गयी तो आपने मुजरिम को बेकसूर की ही निगाहों से देखा था। मैं संकोच से सिकुड़ती कोने में सटी जा रही थी और आप प्रेम-भरी, चाह-भरी चितवन से मेरे हित की बातें सोच रहे थे। आप ही ने बतलाया था कि कोने में कीड़े-मकोड़े होते हैं अतः कोने से अलग होकर खड़े होने में ही भलाई है।

कहाँ तक कहूँ, उस दिन मुझे आपकी बतलाई हितकी बातें कड़वी लग रही थीं और जाड़ा खाकर भी हृदय में ज्ञान नहीं उत्पन्न हो रहा था। परन्तु आपका करुण हृदय पसीजने से न चूका। उठे, पास तक आये, हाथ

पकड़ कर घसीटा और न चलने पर पैरों पड़-पड़ कर रास्ते पर लाये।

खैर, ये भी हुईं बीती बातें। गड़े मुर्दे उखाड़ने से अब दिल का कब्रिस्तान खुद जायगा। परन्तु स्मरण कीजिये उन दिनों को, जब मैं लवङ्ग-लता वृक्ष से लिपटने के लिये खुद बढ़ी थी; और फलतः खुद हरुवे-हरुवे आपके गरुवे लगने लगी थी। अब जब उङ्गली पकड़ते-पकड़ते, पहुंचा पकड़ने के मैं काबिल हुई, तो आपको न जाने किस नफा-नुकसान का बोध हुआ कि साम्प्रदायिक दङ्गे के दिनों के दूकानदारों की तरह एकाएक दूकान खुली छोड़ कर छू-मन्तर हो गये ?

उस दिन पड़ोस की ठकुराइन कह रही थीं कि एक थे रसिया बालम। रात में बीबी ने कहा—थोड़ा खिसक चलिये, तो खिसक गये। स्थान पर्याप्त न पाकर बीबी ने कहीं दूसरी बार फिर कहा थोड़ा और खिसकिये तो आप चारपाई से नीचे उतर कर चलते बने ? बीबी ने समझा शायद किसी क्षणिक आवश्यकता से कहीं जा रहे होंगे, अतः बुलाया नहीं, और आप रात ही रात स्टेशन पर पहुँच कर कलकत्ते चले गये ! कलकत्ते से आपने बीबी को लिखा कि, और खिसक जाऊँ कि काम चल जायगा ?

मेरे देवता ! मैंने तो कभी ऐसी बात भी नहीं कही। आवश्यकता पड़ी है तो हाँ, मैं अलबत्ता खिसक गयी हूँ। तब कृपया बतलाइये कि आप भी उन रसीले बालम की भाँति कलकत्ते क्यों खिसक गये ?

पत्र बढ़ रहा है लेकिन आप ही बताइये कि उपाय ही क्या है ? दुख तो परम्परा से रो-रोकर ही कटा है। दो महीने अट्ठाइस दिन का दुःख इन थोड़े से पन्नों ही में कैसे आ जाय ? दिल के जिस गुबार के लिये दस-पाँच रीम कागज भी कम होगा उसके लिये दस-पाँच पन्ने भी न लिखूँ तो तबियत हल्की कैसे होगी ? आपको पढ़ने का अवकाश न हो तो बिना पढ़े ही रख देना, परन्तु मैं लिखने से बाज नहीं आ सकती।

प्रियतम ! इस समय मेरे आगे जो पुस्तक रखी है, भजनों की है। खुली है, इसलिये इसमें जो लाइन मेरी आँखों को खटकती है वह है 'सुरति मोरी काहे बिसराई राम।' इस लाइन को पढ़कर मुझे ऐसा जान पड़ता है, मेरा दुःख नया नहीं है। सनातन से ही पुरुष-समाज स्त्री-समाज के ऊपर अत्याचार करता रहा है। पहले तो प्रेम का ढँकोसला दिखाकर ठगता है, और जब कुछ हाथ लग जाता है तो रफूचक्कर होता है। मेरा विश्वास है कि प्रेम कर के पीठ दिखाना धर्म-शास्त्र और काम-शास्त्र, किसी में उचित नहीं कहा गया है।

आपको अच्छी तरह याद होगा कि विवाह में जब आप मुझ 'कमलिनी' के ऊपर भँवरे-से मँडराया करते थे, तो आपकी भाभी साहबा आपकी हरकतें ताड़कर कटाक्ष किया करती थीं। उनका :—

'व्याहहि ते भये कान्ह लट्टू,
तब ह्वैहै कहा जब होहिगो गौनो'।

पद भूलने की चीज नहीं है। अतः अब मैं कहना चाहती हूँ कि व्याह से गौने लट्टू होने की अधिक उम्मेद इसलिये की जाती है कि प्रेम, जिसे रांड का चर्खा भी कहा जा सकता है, सूत अधिक कातने लगता है और सूत भी अच्छी क्वालिटी का निकलता है। मुझे गौने को भी सब बातें याद हैं। इस दूसरी बार जब मैं आपके घर आयी थी, तो मुझ में बहुत बड़ा परिवर्तन हो गया था। पहली बार मैं आपके सामने जो भूलें कर गयी थी, उनको सोच-सोचकर मेरी गर्दन लज्जा से झुकने लगी। इस समय मुझ में अपने 'नफा-नुकसान' को समझाने की क्षमता आ गयी थी, अतः मैंने कवि 'तुलसीदास' का एक पद कान पकड़ कर दोहराया था अर्थात् 'अब लौं नसानी अब ना नसैहों।' लेकिन दुःख है कि मुझे इस आधार पर कार्य करने की आपने सुविधा न दी और अचानक 'विदेशिया' हो गये।

फिर भी इसमें कोई सन्देह नहीं है कि कलकी रात जाग कर बीती है। मुझे आपकी कठोरता पर और दगाबाजी पर बहुत सी बातें सोचनी पड़ीं। कितनी रोयी कह नहीं सकती। इसके उपरान्त जो कुछ हुआ, वह काफी हुआ। मुझे ऐसा जान पड़ा कि बड़े जोर से बादल गरज रहे हैं और पल भर में ही मूसलाधार वृष्टि शुरू हो गयी। सहसा यह भी जान पड़ा कि सदा की भाँति आप भी आकर मेरे पास लेट गये हैं। मैं आपसे कुछ पूछना चाहती थी, परन्तु तब तक एक बार बिजली ऐसे जोर से कड़की कि मैं बहुत डरी। सदा की भाँति और पुरानी पड़ी आदत के अनुसार मैं आपके सीने में मुँह छिपाना चाहती थी, परन्तु जैसे ही मैं बढ़ी, चारपाई की पाटी से सर टकराया तो मेरी नींद खुल गयीं। देखा, आपका पता न था। सर सहलाती हुई मैं न जाने क्या-क्या सोचती रही, और फिर सबेरे तक दर्द के कारण सो न पायी। पता नहीं, यह 'नींद हराम' कब तक रहेगी।

उनकी मुलाकात

३

कर्ज तो सभी लेते हैं। हमने भी कर्ज लिया था। लेकिन तजुर्बे से पता चला कि कर्ज भी सोच-समझ कर लेना चाहिये। मैंने थोड़ी गलती की और इसी लिए काफी परेशानी उठानी पड़ी।

मैं लपका चला जा रहा था। समय क्या होगा, इसका कुछ पता नहीं। बगल की एक दूकान से टन्न-टन्न आठ की आवाज कानों में जरूर पड़ी थी, परन्तु १२ बजे घर से निकला था और लगभग दो घण्टे मटरगश्ती करने पर भी आठ बजा हो, यह कैसे हो सकता था ? फिर मैंने गर्दन घुमाकर उस दीवाल-घड़ी को भी तो देख लिया था सुइयों के हिसाब से २ बज रहा था। आवाज से घड़ी आठ का इशारा करे और सुइयों से दो बजने की सूचना दे, तो ऐसे मौकों पर घड़ी के मालिक को देखने से ही फैसला हो सकता है। मैंने भी दूकानदार पर एक नजर डाली थी। उसके चेहरे पर तो १२ बज रहा था।

इसी से कहा कि समय का पता नहीं। मैं लपका चला जा रहा था, वैसे ही जैसे वर्षों के तकाजे के उपरान्त कोई लेखक अपने प्रकाशक से रुपया दो रुपया लेकर घर जा रहा हो। हृदय की उतावली बढ़ रही थी, पैर सीधे नहीं पड़ रहे थे, टोपी तिरछी हो गयी थी, परन्तु मैं लपका चला जा रहा था।

पहले चौराहा आया। चौराहे से आगे बढ़ने पर गली मिली। गली में घुसने पर ६३ नम्बर का मकान दिखाई पड़ा और मकान के भीतर जाने पर उनका पता भी लग गया। कुछ देर तक मुझे अपने में कोलम्बस की आत्मा का अनुभव होने लगा। अमेरिका का पता लग चुका था।

लेकिन अमेरिका तो एक देश है। वे देश नहीं थे, बल्कि थे एक मनुष्य। सच्चे मनुष्य—मयूर की तरह मृदु-भाषी, लखनऊ के नवाबों के खाने योग्य ककड़ी की तरह नम्र और उस अच्छी जातिवाले सर्प की भाँति स्वभाव वाले जिसे यदि आप कुचलें नहीं, तो काटने के लिये आपके पास न फटके।

मेरी प्रसन्नता उस समय रबर के गुब्बारे की तरह बढ़ी, जब मेरे कानों में यह शुभ-सम्वाद पहुंचा कि वे मकान के चौथे तल्ले में रहते हैं। इसके दो कारण थे। प्रथम तो "ऊँच निवास नीच करतूती" सिद्धान्त उन पर लागू नहीं हो सकता था। दूसरे मुझे भी सीढ़ियों पर चढ़ कर उनके पास पहुंचना होगा। सचमुच में ऐसे लोगों से बहुत प्रसन्न रहता हूँ, जो मकानों के ऊपरी तल्लों में रहते हैं। बात भी ठीक है। ऐसे लोग स्वयं तो ऊँचे रहते ही हैं अपने इष्ट-मित्रों को भी उत्थान की ओर ले जाने में सहायक होते हैं।

खैर! मैं ऊपर पहुंचा। एक ही कतार में चार कमरे दिखाई पड़े। परन्तु एक के अतिरिक्त सभी मेरे स्वागतार्थ खुले थे। अतः यह उचित जान पड़ा कि एक बार पुकार कर देख लूँ कि आखिर वे मेरा स्वागत किस कमरे में करेंगे? परन्तु तबतक एक सज्जन ने फटे बाँस की-सी आवाज में पूछा—'आप किसे चाहते हैं?''

— यहाँ पण्डित गीताकिशोर शास्त्री रहते हैं?' मैंने उनके उत्तर में कहा।

—'हाँ, लेकिन वे बाहर गये हैं। यह बन्द कमरा उन्हीं का है।'

'बाहर गये हैं, यह सुनकर मेरी वही हालत हुई, जो किसी को चार तल्ले से छोड़ देने से हो सकती थी। मेरी सारी आशाओं पर पानी फिर गया। मुझे इस बात का गर्व था कि दर्शन-शास्त्र का मैंने काफी अध्ययन किया है। परन्तु आज जब तक पण्डित के भी दर्शन न कर सका, तो दर्शन-शास्त्र से विश्वास उठ जाना स्वाभाविक था। मुझे झख मार कर लौट आना पड़ा।

लौट तो पड़ा परन्तु अब किधर जाऊँ, समझ में नहीं आ रहा था। घर जा नहीं सकता था। बाधा यह थी कि यद्यपि अपना कुछ ऐसा विश्वास है कि किसी

काबुली से रुपये उधार ले ले परन्तु अपनी बीबी से मनुष्य को कर्ज हर्गिज न लेना चाहिये; लेकिन काम पड़ने पर काबुली भी काबुल चले जाते हैं। इसीलिये १५ दिन के वादे पर बीबी से २५) उधार ले लिये थे। आज ६५ दिन हो गये थे। तकाजे के मारे नाक में दम आ गया था, उस पर दो दिन से सर्दी जुकाम से भी परेशान हो रहा था। बीबी ने कल जब यहाँ तक कहा कि हिन्दू धर्म में लोग गुरु-ऋण, मातृ-ऋण और पितृ-ऋण से उद्धार होने की चेष्टा करते हैं परन्तु आप शायद पत्नी-ऋण से भी उद्धार न होंगे, तो ताव आ गया था। मैंने प्रतिज्ञा कर ली थी कि कल चाहे जहन्नुम से रुपया लाना पड़े परन्तु शाम तक २५) तुम्हें दूँगा जरूर।

आज ही उस रुपये की ड्यू थी। पास में २५ पैसे भी न थे लेकिन पं० गीताकिशोर के बल पर मैं निश्चिन्त-सा था। वास्तव में इसीलिये उनके बुलाने पर मैं दिये हुए ३ बजे के समय पर घूमते-घामते उनके मकान पर पहुंचा भी था। अब यदि वे न मिले तो उसमें मेरा क्या कसूर? लेकिन मुसीबत तो यह थी कि घर कौन सा मुँह लेकर जाऊँ। रुपये के लिये जलील होना और वह भी अपनी बीबी के सामने! मेरी आँखों के आगे अन्धेरा छाने लगा।

खैर, किसी प्रकार जूता घसीटता चौराहे तक आया। कारपोरेशन की अम्बुलेंस आ रही थी। मैं उसे अभि-

वादन करने लगा। मन ही मन 'देवी! ईश्वर न करे कि तुम्हें कभी मेरी मदद करनी पड़े' यह कह कर मैं आगे बढ़ने वाला था कि तब तक सामने से आते हुए पण्डित गीताकिशोर दिखाई पड़ गये। उन्होंने भी मुझे देख लिया। फौरन बोले—"अरे! तुम्हें बुलाया था, यह तो हमें ख्याल ही नहीं रहा। जरा स्टेशन चला गया था। खैर! लो।" यह कह कर उन्होंने मनीबेग से २५) के नोट निकाल कर मेरे हवाले कर दिये। मेरा चेहरा धतूरे के फूल की तरह खिल उठा। दाढ़ी बढ़ी न होती तो सच-मुच मैं पण्डितजी का मुँह चूम लेता।

अब क्या कहना था? चलते समय उनको प्रणाम किया या नहीं, यह तो याद नहीं है लेकिन घर आकर मैंने सब से पहले बीबी को २५) के नोट दिये थे और तब जूते उतारे थे। परिणाम अच्छा हुआ। बीबी ने रुपये पाकर उस दिन खातिर तो खूब की ही, उस पर मेरा वह काम भी सानन्द पूरा हो गया जो दाढ़ी बढ़ी हुई होने के कारण पण्डित गीताकिशोर शास्त्री के साथ नहीं कर सका था।

६५ दिन के बाद पति-पत्नी के आनन्द के साथ मिलने का यह दिन भारतीय इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखा जाय तो भी कोई आश्चर्य नहीं।

लेकिन कहा क्या जाय ! लोग अभिनेत्रियों आदि की मुलाकात को तो प्रमुख स्थान देते हैं पर जिन पं० गीता-किशोर शास्त्री ने दो अलग हुये दिलों को मिला दिया उनकी चर्चा कोई नहीं करता । खैर, कुछ भी हो उस दिन २५) दे देने से मुझे कविता लिखने की सुविधा मिल गई और मैंने सिनेमा-पुराण के दो काण्ड लिख डाले ।

श्री सिनेमा-पुराण

अथ प्रथम सोपान दर्शक-काण्ड लिख्यते ।

हवड़ा का जबड़ा जहाँ; नीचे बहती गंग ।
कहेहु सम्भु सन उमा यह; दे धतूर अरु भंग ॥
जाकर पथ गहि जात नित; चाकर-सेठ-किसान ।
नाथ सुनावहु मोंहि वह; बाइसकोप पुरान ॥

सम्भु कहेउ सुनु दच्छ-कुमारी ।
पूछेहु भल यह समय बिचारी ॥
दिवस ट्यूज-डे पूरन मासी ।
टाइम इवनिंग सुखकर रासी ॥
परम पवित्र अगस्त महीना ।
कहहुँ कथा मैं आगु नवीना ॥

सन्-सम्वत अब कहिहौं नाहीं ।
कथा बढ़े, दोउ जिउ अकुलाहीं ॥
सुनहु ध्यान धरि लखि बस-ड्रामा ।
जाय रोड यह दीखेउ ड्रामा ॥
भवन सोइ पर अब जो देखहु ।
खड़ी उमा तुम मग अवरेखहु ॥
कोटि वल्ब अरु कोटिन लट्टू ।
बँधे द्वार पर ऐठें पट्टू ॥
भीर किये सब मरद निखट्टू ।
अगनित खड़े जोय के टट्टू ॥

भवन-गेट के चहूँ दिसि; निज-निज दाँत निकारि ।
भीर जुरै ऐसी प्रबल; तिल न सकै कोउ डारि ॥

हाकर चाकर अरु पनवारी ।
सहेबन की सींचहिं फुलवारी ॥
मोटिया मिस्त्री कुली कबारी ।
मंडिन महँ बेचहिं तरकारी ॥
भंजहिं जे फावड़ा कुल्हाड़ी ।
हड़तालिन के चलहिं अगाड़ी ॥

हांकहिं मोटर भैंसा-गाड़ी ।
हाकी आदिक केर खिलाड़ी ॥
पियहिं भंग गांजा मधु ताड़ी ।
धुरहू बाबू चतुर अनाड़ी ॥
सिल्क-सूमड़े खद्दर-धारी ।
करहि दिवस-निसि पाकिटमारी ॥
बड़े मार्केट के पंसारी ।
हीरा मोतिन के व्यापारी ॥
चोर, उचक्के, लम्पट ज्वारी ।
भाँति-भाँति की करैं चमारी ॥

लुच्चे, गुण्डे, चाँइया; होटल खोलनहार ।
बुकसेलर, मनिहार अरु; घड़ी-साज, भटियार ॥

अधिक और का तुमसन कहहूँ ।
देखि दसा दारुन दुख दहहूँ ॥
डाक्टर, मास्टर, निपुन वकीला ।
मोटे लम्बे बदन लचीला ॥
नाना भाँतिन के चपरासी ।
घर महँ मिलहि न रोटी बासी ॥

रजक, कहारा, नाऊ-बारी।
करहिं नहीं जे उद्यम भारी॥
खटिक सुनार लुहार कसेरा।
सकल मदारी और सँपेरा॥
फूल-पात जे बेंचहिं माली।
बूचड़ मुग़ुल पठान डफाली॥
बेहना तुरुक तमोली तेली।
जे अखबार निकारहिं डेली॥

सांझ होत ही ते सकल; काढ़ि काठ ते पाँव।
पैसा लै लै प्रेम से; जुरहिं जाय तेहि ठाँव॥

श्री सिनेमा-पुराण

अथ द्वितीय सोपान 'टिकट-काण्ड' लिख्यते।

साँझ समय दूसरे दिन; प्रिया उमा के साथ।
हवड़ा ब्रिज पर सैर कहँ; पहुँचे गौरी-नाथ॥
'लिपटन-चाय-बोर्ड' रह जहँवा।
राह बराय बैठि गये तहँवा॥
हुगली-जल जब देखन लागे।
उमा लखेहु स्वामिहिं अनुरागे॥

बैठीं शिव समीप हरसाई ।
बाइसकोप-कथा चितु आई ॥
पाँय सिकोरि जोर जुग-पानी ।
बिहँसि प्रबोधि कही प्रिय बानी ॥
बिस्वनाथ मम नाथ पुरारी ।
त्रिभुवन महिमा विदित तुम्हारी ॥
कथा सिनेमा की हितकारी ।
सोइ पूछन चह सैल-कुमारी ॥
जौ मो पर प्रसन्न सुखरासी ।
जानिय सत्य मोहिं निज दासी ॥
तौ प्रभु हरहु मोर अग्याना ।
कहि फिर वही नवीन पुराना ॥

पैसा लै लै तौ तहाँ; जुरैं नारि-नर झारि ।
पै पैसा सब का करैं; सो अब कहहु पुरारि ॥

प्रश्न उमा कर सहज सुहाई ।
छल-विहीनि सुनि सिव मन भाई ॥
चितै गौरि दिसि, मन मुसकाये ।
प्रेम पुलक लोचन जल छाये ॥

बहुरि डकारि, जटा फटकारी ।
हरसि सुधा-सम गिरा उचारी ॥
धन्य धन्य गिरि-राज-कुमारी ।
तुमहिं पाय हम भये सुखारी ॥
तुम यहि कथा अधिक अनुरागी ।
कीन्हेउ प्रश्न देश-हित लागी ॥
पूछेहु चालू कथा प्रसंगा ।
बुध-गंवार बिच्च बनी बरंगा ॥
तब हम मौन रहब अब कैसे ।
कहब जायँ जहँ सब के पैसे ॥
दरसक सकल कहा हम गाई ।
सुनहु आजु आगे मन लाई ॥

पहुँचि सिनेमा-गेट पै; बुधजन लंठ गँवार ।
पैसा दे लेवहिं टिकट; निज-निज रुचि अनुसार ॥

पै कहुँ टिकट लेत तुम जाहू ।
सत्य कहहुँ तुमहूँ चिल्लाहू ॥
होय कोलाहल, ब्यापइ संका ।
हनुमत फूंकि गये जनु लंका ॥

मिलइ न टिकट, विकट भट लरहीं ।
एक एक पर टूटे परहीं ॥
आधा कोउ पूरा मुँह बावहि ।
निकसि पसीना दांतन आवहि ॥
भीतर भीर परे जे जोधा ।
हाँफि-हाँफि दिखरावहिं क्रोधा ॥
उठइ न पाँव, प्रान रहे ऊबी ।
जीवन-नाव रही मुँइ डूबी ॥
केवट मूढ़, किनारा दूरी ।
कहहिं मनहिं मन ईस बिसूरी ॥
जौ यहि बार प्रान रहि जइहैं ।
जियत न लेन टिकट फिरि अइहैं ॥

यहि विधि संकट झेलि सब; टिकट लिये कढ़ि जाहि ।
उमा, हमारे तौ मते; मर्द बखानिय ताहि ॥
कहिहौ जग बौरायगा; सबहिं लगइहौ खोरि ।
पै इन सबहूँ ते दुखद; राम कहानी मोरि ॥
बोरि कमण्डल गंग सन; भंग लेहु जो घोरि ।
पियहुँ, कहहुँ आपनि कथा; साहस सकल बटोर ॥

❀

❀ ❀

अनोखी सभा

४

आज-कल की सभाओं में मार-पीट का हो जाना असम्भव नहीं है। परन्तु 'गंवार-महासम्मेलन' में बाहर की विद्वान्-पार्टी ने सभापति को पीटने की योजना तैयार की थी। पाठक यह जानकर प्रसन्न होंगे कि सभा-भवन के दरवाजे पर असंख्य विद्वान् डण्डे ताने खड़े ही रहे और सभापति सकुशल निकल गये।

भारत में जिस प्रकार अन्य अनेक अखिल भारतवर्षीय सम्मेलनों के अधिवेशन होकर समाप्त हो जाते हैं, उसी प्रकार 'अखिल भारतवर्षीय गंवार महासम्मेलन' का अधिवेशन भी सकुशल समाप्त हो गया। जनता की उपस्थिति कैसी रही, इसका हमें क्या पता परन्तु सभापति के भाषण की एक प्रति जो हमारे हाथ, रिपोर्टर की कृपा से लग गयी है, उसे हम ज्यों की त्यों दे रहे हैं। हाँ, दो-चार अन्य विलक्षण बातें जो इस सम्मेलन को सुनने को मिली हैं, वे ये हैं :—

१—कहते हैं कि संसार के इतिहास में यह पहली सभा थी, जिस में जनता सभापति की ओर पीठ करके बैठी थी।

२—अधिवेशन की सूचना न तो किसी पत्र में प्रकाशित हुई थी और न किसी प्रकार का विज्ञापन ही किया गया था, परन्तु भीड़ ऐसी हुई कि मजबूर होकर दरवाजे को रोकने के लिये स्वयंसेवकों को अपनी टाँगें अड़ा देनी पड़ीं थीं।

३—सभापति ने पान खाकर भाषण दिया था। भाषण इतना जोरदार हुआ कि बूढ़े सभापति के पोपले मुँह से निकले हुए छींटों से अन्त में खद्दर का सफेद कुरता लाल पड़ गया था।

४—सभा-भवन में अनेक आदर्श वाक्य टाँग दिये गये थे; जिनमें कुछ इस प्रकार थे :—

१—मूर्ख-मूर्खता जिन्दावाद।

२—भारत से विद्वत्ता का क्षय हो।

३—सबसे भले विमूढ़, जिन्हहिं न व्यापइ जगत-गति।

४—मूर्खता ही मनुष्य का आभूषण है।

५—यह संसार एक पशुशाला है। आदि आदि॥

सभापति का भाषण

भाइयो!

आज आप सब असंख्य भाइयों के बीच में अपने को पाकर यद्यपि मैं इतना आनन्द-विभोर हो गया हूँ कि मन को लाख समझाने पर भी बार-बार यही इच्छा हो रही है कि जाकर किसी कुएँ-तालाब में डूब मरूँ और फिर संसार को यह काला मुँह न दिखाऊँ, परन्तु शायद कर्त्तव्य का स्थान दुनिया में हिमालय की एवेरेस्ट चोटी

से भी ऊँचा है, अतः मजबूर हूँ। सभापति चुन कर प्रेम-डोरी से बाँध कर यद्यपि आप सब अक्ल के दुश्मनों और मेरे शुभचिन्तक भाइयों ने कोई अच्छा काम नहीं किया है, परन्तु अब यदि कृतज्ञता प्रकट करने के बजाय गालियाँ दूँ, तो कौन जमीकन्द खोद लूँगा? मैं अपना भाषण बड़े प्रेम से, दूसरों के पैर पड़कर जब लिखा लाया हूँ तो झख-मारकर पढ़ना ही पड़ेगा। परन्तु बिना किन्तु-परन्तु के यह कहने के लिये विवश हूँ कि आज आप लोगों ने वह अपराध किया है कि जिस का दण्ड आप ही नहीं, आपके नाती-पोते भी भोगें तो कोई आश्चर्य नहीं।

बन्धुओ! मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि आप उन गंवार-पुंगवों में से हैं, जिन्होंने मनुष्यता कुत्तों के आगे डाल दी है परन्तु ईश्वर के ऊपर तरस खाकर कृपया यह तो बतलाइये कि क्या संसार के सब गँवार मर गये हैं, जो बेगार में मुझे पकड़ा गया है? मेरी समझ से आज इस देश में अनेक लक्ष्मी के लाड़ले और सरस्वती के सपूत तो इस आसन के योग्य थे ही, इस सभा में भी एक से एक परले सिरे का गँवार मौजूद है। परन्तु सभी को दूध की मक्खी की तरह निकाल कर यह कार्य-भार मुझे सौंपा गया, क्या इससे यह प्रकट नहीं होता है कि कोई न कोई षड्यन्त्र अवश्य है? लेकिन याद रखिये दूसरे को सभापति चुनते तो कार्यवाही तो सुन्दर होती ही साथ ही फल भी

हाथों-हाथ मिल जाता। यहाँ तो न मेरे हाथ में छड़ी है न छाता। सभापति बनने का पहला मौका है और आरम्भ ही में गँवारों से पाला पड़ गया है। न जाने आज कैसी नौबत बजे ?

मेरे कद्रदानो! गफलत में न पड़े रहो। मैं भाषण प्रारम्भ करने जा रहा हूँ। इसलिये आँखें मूँदकर इसी प्रकार मजे में झपकियाँ लेते हुए सुनो कि भारतीय इतिहास में एसी सभाएँ कम नहीं हुई हैं कि जिन में मेरे जैसा तो गँवार सभापति था और आप जैसी गँवार जनता! परन्तु यह बड़े हर्ष का विषय है कि इस सभा ने नाम और उद्देश्य सभी बातें आरम्भ में ही स्पष्ट कर दी हैं। अब आगे की विचार-धारा इस प्रकार है कि स्वागताध्यक्ष महोदय ने अभी जो अपना गँवारपन दिखाया है उसे तो आप लोगों ने देखा ही है, परन्तु उनसे पृथक मैं भी कुछ कहूँ, शायद इसीलिये आप लोग दाँत बाँधे, कान खोले माटी के माधो की तरह डटे हुए हैं। परन्तु खेद है कि विषय गम्भीर न होने पर भी कुछ ऐसा अललटप्पू है कि धागे-धागे से रस्सी नहीं तैयार की जा सकती है।

भाइयो! भौजाइयों की चिन्ता इस समय न करो और कान में अँगुली डालकर इसी प्रकार सुनो कि गँवारपन जिसेहमारे भाषा-शास्त्र के दिग्गज मूर्खता नाम से सम्बोधित

करते हैं, हम भारत-निवासियों का सच्चा आभूषण है। मूर्खता जैसे सच्चे आभूषण के लिये हम सब भाइयों ने चेष्टा की और सफल हुए, यह आनन्द का विषय है। अन्यथा क्या यह जन्म-जन्मान्तर में भी सम्भव था कि हमारा माम विदेशों में चमेली के इत्र की सुगन्ध की भाँति कभी फैलता? परन्तु कितने दुःख का विषय है कि विद्वान्-समाज आज हम सब को कोस रहा है। कदाचित् उनका ध्यान है कि भारत के गँवारों में कुछ कर दिखाने की सामर्थ्य नहीं है। हम अधिवेशन में असंख्य गँवारों के सभापति होने के नाते आज साफ साफ बतला देना चाहते हैं कि दुनिया का छोटा, बड़ा, मझोला, कोई भी ऐसा काम नहीं है, जिसे हम अपने प्रतिद्वन्द्वी समझदार कहलाने वाले व्यक्तियों के समान ही न कर सकें।

लेकिन नहीं। हम आज ऐसी कोई बात नहीं चाहते कि जिसके लिये किसी टीकाकार की तलाश करनी पड़े। हमारी मंशा तो केवल यह है कि यह गँवार युग है. अतः आप सब लोग समय के साथ बहना सीखिये। जब मन्द-मन्द 'पुरवइया' चल रही हो, तब पश्चिम की तरफ पीठ करके 'जैसी बहै बयारि पीठि तब तैसी कीजै' के सिद्धान्त को न भूल जाइये। आज भलाई इसी में है कि हम आपको गँवार समझें और आप हमें गँवार समझें और तभी तीसरा हम और आप दोनों को गँवार कह सकेगा। आये दिन

जब विद्वान् भी नम्रता के साथ अपने मुँह से स्वीकार कर रहे हैं कि हम गँवार हैं; उस समय यदि हम लोगों ने अपने को विद्वान् कहा भी तो क्या परिणाम निकलेगा ? लोग गँवार ही तो समझ लेंगे ? अतः इस दृष्टि से भी उचित यही है कि हम सब एक स्वर में संसार को सुना दें कि हम गँवार हैं और गँवार ही रहेंगे।

आप लोग सोचते होंगे कि आज जो देश के बड़े-बड़े नेता हैं, वे विद्वान् हैं, क्योंकि स्वयं तो बुद्धि के साथ आगे बढ़ ही रहे हैं, साथ ही यह भी चेष्टा कर रहे हैं कि देश से गँवारों की संख्या कम हो जाय। भाइयो, बपले में न पड़े रहो, ये नेता विद्वान् नहीं हैं। विद्वान् होते तो क्या इनको यह भी न मालूम होता कि रामचरित-मानस में क्या लिखा है ? डरने का विषय नहीं है। इन नेताओं का परिश्रम व्यर्थ भी जा सकता है, क्योंकि रामचरित- मानस में स्पष्ट लिखा है कि,

'मूरख-हृदय म चेत; जो गुरु मिलहिं विरंचि-सम ।'

अरे! हम उन गँवारों में से है, जिनका गुरु यदि ब्रह्मा भी बने तो कोई लाभ नहीं। फिर नेता तो नेता ही हैं, उस पर त्रेतायुग के भी नहीं कलियुग के।

महानुभावो ! एक बात कहते हुए हमें तो प्रसन्नता हो रही है, परन्तु सुनकर आप लोगों के हृदय भी धतूरे के

फूल की तरह खिले बिना न रहेंगे कि आज हम गँवारों की संख्या उत्तरोत्तर बढ़ रही है। भूलते नहीं हैं तो हमें अच्छी तरह याद है कि एक जमाना वह था कि देश में जो पढ़े-लिखे नहीं होते थे, वही गँवार हुआ करते थे, परन्तु आज स्थिति काफी सुधर चुकी है। अब पढ़े-लिखे भी निःसङ्कोच हमारे नाम की छत्र-छाया में आ रहे हैं। बड़े-बड़े डिग्री-धारियों को अपनी कतार में खड़े देखकर किस भाई का मन आनन्द-सागर में डुबकिया न लेने लगेगा ?

अभी उस दिन की ही बात है। मैं कहीं जा रहा था। रास्ते में एक पाकिटमार मेरी पाकिट से चवन्नी के धोखे अधेला निकाल ले गया। जिस समय पान खाने की नीयत से मैं एक पान की दूकान पर रुका, तो अधेला को खोजते हुए मुझे पाकिट के सफाया हो जाने का ज्ञान हुआ। दूसरा होता तो कदाचित् अफसोस करने लगता परन्तु मैं प्रसन्नता से वहीं नाचने लगा। वास्तव में यह प्रसन्नता का विषय भी था। ये चोर और पाकिटमार अपने को बड़े होशियार लगाते थे, परन्तु आज ये भी हमारे झण्डे के नीचे आ रहे हैं। मुझे वह पाकिटमार कहीं दिखाई भी न पड़ा, नहीं तो मेरी दूसरी पाकिट में, जो दूसरा अधेला पड़ा था उसे मैं पान खाने के लिए पुरस्कार में दे देता।

शायद आप लोग नहीं जानते; लेकिन मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि हम गँवारों की निगाह में समय को कोई

कीमत नहीं है। लगातार सावन की झड़ी की तरह कुछ बोलते रहने के अभ्यास में यदि हम लोगों को अभी तक कोई तमगा नहीं मिला, तो यह इन विद्वानों की साजिश है, जो प्रयत्न करके भी किसी युग में हम लोगों से प्रतिष्ठा नहीं पा सके। फिर भी यह कुछ कम आश्चर्य की बाप नहीं है कि ठसाठस यहाँ का उपस्थित जन-समूह हमारे भाषण में जिस तरह द्विचित्त है, बाहर खड़े हुए विद्वानों की संख्या उसी प्रकार दत्तचित्त। वे अवली गद्दे लगा कर हमारे एक-एक अक्षर के अर्थ की प्रचण्ड क्रोधाग्नि में स्वतः ही भस्म हो रहे हैं। मैं सुन आया हूँ कि सभा भङ्ग होते ही वे दृढ़-प्रतिज्ञ विचार-विजयी योगी की तरह मेरा कचूमर निकालने के लिए .'..'.:'. कर रहे हैं। यदि यह सम्भव हुआ तो बिना विवेचन ही हमारी छत्र-छाया में वे हमारे ही समाज के प्रमुख अङ्ग साबित हो जायंगे।

इसलिए आप लोगों को धन्यवाद देकर अब हम पिछले दरवाजे की ओर से गायब हो रहे हैं। आशा है कि सामने के दरवाजे से आप लोग भी निकल कर सकुशल घर पहुँच जायँगे।

खेदू सरदार

खेदू सरदार की राजनीति के हम कायल हैं। हमने उनकी इस नेक सलाह से कभी-कभी फायदा भी उठाया है। परन्तु उनके 'उलट-फेर' वाले सुझाव को हम मानने के लिए तैयार नहीं हैं। हो सकता है कि इसमें भी कुछ राजनीतिक चाल हो।

खेदू सरदार करते तो खेती थे, लेकिन थे सकल-ज्ञान-सागर। कोई भी ऐसा विषय न था जिसमें उनकी पूरी पहुंच न हो। पढ़े-लिखे थोड़ा थे। एक ही साप्ताहिक अखबार मँगाते थे; परन्तु चीन-जापान की लड़ाई किस बात पर हुई; जर्मनी के खिलाफ़ ब्रिट्रेन को क्यों हथियार उठाना पड़ा और रूस-फ़िनलैण्ड के युद्ध का आखिरी नतीजा क्या होगा? आदि-आदि बातें जिसे न मालूम हों आप से आसानी से समझ सकता था परन्तु खेद है कि खेदू सरदार जैसे राजनीतिज्ञ की राज-नीति अपने घर पर लागू नहीं होती थी। स्त्री के मारे नाक में दम था! खाते-पीते, उठते-बैठते उन्हें चैन न था। वे चाहते थे स्त्री भी कुछ दुनियावी बातें जान ले, लेकिन पत्थर पर बीज कब जमा है!

एक दिन की बात है खेदू सरदार भोजन करके आराम करना चाहते थे, लेकिन स्त्री उनका आराम से लेटना कब गवारा कर सकती थी। डाटकर कहने लगी—"खाकर बस लेट रहे? खेत के आलू चोर रोज़ थोड़े-न-

थोड़े खोद ले जाते हैं। वहीं चले जाओ और आलू खोद कर ही घर में रख दो।"

उपाय क्या था ? खेदू सरदार ने चारपाई पर पड़े-पड़े एक बार अँगड़ाई ली फिर उठे! चिलम भर कर दो फूँकें लगाईं और फावड़ा लेकर चले खेत की ओर।

दो-चार फावड़े मारते ही दम उखड़ आया। पसीने से लथपथ खेदू सरदार अधिक परिश्रम कैसे कर सकते थे लेकिन घर लौट जाना भी खतरे से खाली न था। एक पेड़ की छाया में बैठ कर वे अपने भाग्य को कोसने लगे। क्या करें, कहां जायँ, कैसे इन घरेलू झंझटों से छुटकारा मिले ?

सहसा खेदू सरदार के मस्तिष्क में एक सूझ आ धमकी। उन्हें ध्यान आया कि आज कोई राजनीतिक चाल क्यों न खेली जाय ? वे उठे। फावड़ा लिया और अण्टी से एक दुअन्नी निकाल कर घर पहुँचते ही बीबी को सौंप कर कहने लगे—'यह दुअन्नी लो! आलू खोदते-खोदते एक जगह मिल गई है। मैं ज़रा पानी पी लूँ तो फिर जाऊँ।'

पानी पीने के उपरान्त खेदू सरदार एक बार फिर खेत की ओर बढ़े। दो-चार फावड़े मार कर फिर वापस

लौट आये और स्त्री को एक और दुअन्नी देकर बोले—'देखो मालूम होता है कि खेत में कुछ धन मिलेगा। एक दुअन्नी इस बार और मिली है। मैं जरा सो लूँ तो फिर एक बार ध्यान से मन लगा कर सारा खेत खोदूँ।'

दूसरी दुअन्नी देकर खेदू सरकार तो सो गये लेकिन दो दुअन्नियाँ पाकर उनकी स्त्री का धैर्य छूट चुका था। खेदू सरदार सोकर उठें, तब आलू खोदे जायँ और तब खेत के धन का पता चले यह उसे उचित न जँचा। अतः वह स्वयं खेत की ओर फावड़ा लेकर बढ़ी और उत्साह से सारे आलू खोद डाले। परन्तु खेद है कि दुअन्नी-चवन्नी तो क्या कहीं एक ताँबे का पैसा भी न मिला। स्त्री ने आलू लाकर घर में डाल दिए, फावड़ा रख दिया और अपना घरेलू काम करने लगी।

एक नींद सो लेने के बाद खेदू सरदार ने जब चारपाई छोड़ी तो उन्होंने फिर खेत की ओर चलने की तैयारी शुरू की। स्त्री ने पूछा 'कहाँ' तो उत्तर दिया 'जाता हूँ उतने आलू और खोद डालूँ।'

स्त्री ने कहा—'अब खेत में कुछ नहीं है। मैंने सब आलू खोद डाले हैं।'

'एं! यह तुमने क्या किया?' खेदू सरदार ने आश्चर्य से स्त्री की ओर देखते हुए कहा 'मैंने तो कहा था कि

सोकर अभी जा रहा हूँ। तब तुमने क्यों फ़जूल इतनी मेहनत की?'

स्त्री ने कहा—क्या हुआ? तुम सो रहे थे और मुझे फ़ुरसत थी। मैंने सोचा कि मैं ही क्यों न खोद डालूं। लेकिन तुम्हें तो दो दुअन्नियाँ भी मिल गई थीं। मैंने तो सारा खेत छान डाला, लेकिन कुछ भी न मिला।'

'मिलता क्या? खेत में आलू बोये थे; दुअन्नियाँ-चवन्नियाँ थोड़े ही बोई गईं थीं जो तुम्हें मिलतीं।'

स्त्री ने कहा—"तुम तो कहते थे कि ये दुअन्नियाँ खेत में मिली हैं।"

खेदू सरदार ने हँस कर कहा—'दुअन्नियाँ मेरी हैं। लेकिन तुम हमारी राजनीति की जानकारी की क़ायल नहीं होती हो इस लिए तुम्हें यह थोड़ी राजनीति दिखाई है। राजनीति अगर आदमी जान ले तो खुद चाहे सोया करे लेकिन आलू दूसरा ही खोद कर घर ले आवे।'

'आग लगे तुम्हारी राजनीति में' स्त्री ने चिढ़ कर कहा। 'यहाँ तो हाथ में छाले पड़ गये और ये हमें राजनीति सिखाते रहे?'

लेकिन खेदू सरदार का नाम हमें क्यों याद आया; इसका कारण वह लेख है जो बड़ी हिफ़ाजत से हमारी

बीबी के बक्स में बन्द था। जिस समय हमने उनका कर्ज चुकाया था और वे उस रुपये को सँभाल कर रख रही थीं तो हमने उस सिकुड़े हुए लेख को नोटों का पुलिन्दा समझ कर उठा लिया था। यह लेख इस प्रकार था :—

उलट-फेर

प्रत्येक मनुष्य को अपने विद्यार्थी-जीवन में कुछ ऐसे निबन्ध लिखने ही पड़ते हैं जैसे—प्रातःकाल उठने से लाभ; टाँगें फैला कर बैठने से लाभ; रेलगाड़ी से लाभ, बैलगाड़ी से लाभ आदि-आदि। परन्तु यदि ध्यान से देखा जाय तो मनुष्य का सम्पूर्ण जीवन ही विद्यार्थी-जीवन है। महापुरुषों के कथनानुसार यदि हम चाहें तो प्रति दिन इस संसार से कोई न कोई पाठ सीख सकते हैं। किन्तु यह कितने खेद का विषय है कि विद्यार्थी-जीवन समाप्त होते ही हम निबन्ध लिखना, भूल जाते हैं। भगवान् भला करें पत्र-पत्रिकाओं को जन्म देने वाले समझदार को जिसने थोड़ा बहुत अवसर दिया कि यदि कोई कुछ लिखना चाहे तो किसी निबन्ध द्वारा अपने विचार दूसरों तक पहुंचा सकता है। आज हम विद्यार्थी-जीवन की भाँति ही अपनी तुच्छ बुद्धि के अनुसार जनाना ढङ्ग की धोती पहनने से लाभ दिखायेंगे। आशा है कि सभी पुरुष भाई एकान्त में

बैठ कर प्रेम—नहीं, नहीं, विचार करेंगे। हाँ, इतनी और विनम्र प्रार्थना है कि सब लोग विचार जल्दी ही करें, क्योंकि यदि बहुमत दिखाई पड़ा तो ऐक्ट के रूप में लाने के लिये इस प्रस्ताव को शीघ्र ही ऐसेम्बली में पेश किया जायगा। ताकि देश का कल्याण हो।

जनाना ढंग की धोती पहनने से हमारा अभिप्राय उस ढंग की धोती पहनने से है जिस ढंग से आधुनिक महिला-समाज पहनता है और फलतः जिसके कारण उन्हें सर्वत्र ही सुविधा दी जाती है—रेलवे-विभाग ट्रेनों में अलग कम्पार्टमेण्ट रखता है। ट्राम कम्पनियाँ एवं 'मोटर बस सिण्डीकेटें' प्रथक 'लेडीज' सीटें रखती हैं और नाटक तथा सिनेमा वालों ने खोपड़ी के ऊपर के तल्ले में विशेष व्यवस्था की है। आदि आदि।

भारतीय नर-समाज को इस मादा ढंग की धोती पहनने से सर्व प्रथम जो अजगर-साँप जैसा बड़ा और मोटा लाभ होगा; वह यह है कि आप लोग जानते हैं कि आज-कल नारी-समाज द्रुति-गति से उन्नति के पथ पर अग्रसर हो रहा है। ऐसी दशा में यह असम्भव नहीं है कि आप पीछे ही पड़े रह जाँय और आपकी श्रीमती जी क्षितिज के उस पार निकल कर आँखों से ओझल भी हो जायँ! भारत से वह दिन (और रातें भी) गये जब आप उन्हें अपने पैर की

जूती समझते थे। आज वे पुरुषों से किसी भी दशा में हीन नहीं हैं। अतः स्थिति को काबू में लाने के लिए हम श्रीमानों का कर्तव्य ही नहीं परम आवश्यक कर्त्तव्य है कि शीघ्र से शीघ्र कोई ऐसा रास्ता सोच निकालें कि 'गृहस्थ-गाड़ी' के दोनों पहिये बराबर चलें।

इसमें कोई सन्देह नहीं है कि कुछ भाई क्रोध में आकर कह देंगे कि, महिलाएँ जो आज बड़ी-बड़ी सभाएँ करके इस बात का ऐलान कर रही है कि 'हम पुरुषों से किसी भी दशा में हीन नहीं हैं' तो पुरुषों ने किस सभा में यह प्रस्ताव पास किया था कि वे पुरुषों से हीन हैं। यदि किसी कारण-वश पुरुष-समाज उन्हें हीन समझने लगा था तो उचित्त तो यह था कि अपने-अपने घरों में ही किन्हीं उपायों द्वारा (झाड़ू ही लेकर सही) पतियों को बाध्य करतीं कि वे उन्हें हीन न समझें। संगठन करके सभाओं में चिल्लाने से क्या लाभ ? क्या सारा महिला-समाज किसी विशेष महिला के विशेष पति से लड़ने जायगा ?

परन्तु भाई साहब, भूल जाइये ये सब बातें। इन बातों से तो आग में और घृत पड़ेगा। झमेला बढ़ाने से आफत भी बढ़ेगी। अतः आप हमारे विचार के अनुसार जब जनाने ढङ्ग से धोती पहनने लगेंगे तो उन्नति के पथ पर आप भी वैसे ही बढ़ सकेंगे जैसे आपकी श्रीमती ज़ी

बढ़ रही हैं। आप पुरुष-समाज के होकर महिला-समाज को जो हीन-दृष्टि से देखते हैं वह है केवल स्वभाव से। अतः अहम्-भाव आपके हृदय से वैसे ही निकल जायगा जैसे पद-सरोज से बबूल का काँटा और तरकारियों के ढेर से सडा-गला भाँटा। किसी ने कहा भी है कि मनुष्य के ऊपर पोशाक का सबसे बड़ा असर पड़ता है। कोट-पैण्ट पहन कर यदि 'साहब' होने का अनुभव किया जा सकता है तो जनाने ढङ्ग की धोती पहन कर 'जनानेपन' का अनुभव न हो, ऐसी कोई बात नहीं है। सुलह का रास्ता अपने आप झख मार कर निकल आयेगा।

एक दूसरा लाभ इस ढङ्ग की धोती पहनने से यह होगा कि जमाना है अर्थ-संकट का। जिसके पास ईश्वर की कृपा अथवा पक्षपात से चार पैसे हैं उसके लिये तो कोई बात नहीं परन्तु गरीबों को भी मजबूर होकर दो प्रकार की धोतियाँ खरीदनी पड़ती हैं। एक अपने लिये और दूसरी अपनी धर्मपत्नी के लिये। यदि जनाना ढङ्ग की धोती पुरुष भी पहनने लगें तो एक बढ़िया साड़ी घर की इज्जत के लिये काफी है। आपको कहीं जाना है तो आप पहिन कर निकल पड़िये और आपकी श्रीमती जी को कहीं जाना है, तो वे पहिन कर निकल पड़ें।

अब आप कह सकते हैं कि तब महिलाएँ ही पुरुषों की

तरह धोती पहिन कर क्यों न निकलें? लेकिन भाई साहब, हम पहले ही कह चुके हैं कि जमाना है अर्थ-संकट का। पुरुष धोती ही पहन कर निकलें तो गँवार ही तो दिखाई पड़ेंगे। कुरता, टोपी, कमीज, वेस्ट-कोट, कोट, पैण्ट की भी तो आवश्यकता पड़ती है। परन्तु जनाना ढङ्ग से धोती पहन कर आप एक जम्फर पहन लेते हैं तो भी सुन्दर है, नहीं तो पुरुष होने के नाते यदि आप जम्फर भी न पहनेंगे तब भी कोई हर्ज नहीं। आधी धोती नीचे पहन कर आधी आप जिस समय सर के ऊपर ओढ़ लेंगे आप कैसे भी बदसूरत क्यों न हों, हजारों में एक ही दिखाई पड़ेंगे।

फिर यह भी तो है कि आप किसी कारण-वश कोई काम नहीं कर पाते तो आपकी श्रीमती जी कहने लगतीं है कि, "जब आपसे कुछ होता ही नहीं है तो जनानी धोती पहिन कर घर पर क्यों नहीं बैठते, मैं ही कर आऊँ?" मैं सच कहता हूँ ऐसे अवसरों पर आपको जनाने ढङ्ग की धोती से बड़ी सहायता मिलेगी। पहने तो आप पहले ही से हैं, केवल बैठ जाना पड़ेगा और कह देना पड़ेगा कि-लीजिये, मैं बैठा हूँ। आप ही जाकर कर आयें।

खैर! यहाँ तक तो हुई भाई साहब, दिल्लगी। परंतु यदि हम गम्भीरता पूर्वक विचार करें तो एक साधारण

किन्तु ध्यान देने वाला लाभ होगा स्वास्थ्य की दृष्टि से। बात यह है कि यद्यपि बंगाली भाई नंगे सिर रहते हैं परन्तु सम्पूर्ण देश में सिर खुला रखने की अभी प्रथा नहीं है। अतः फैशन एवं देश के रिवाज की रक्षा के लिये हम लोगों को साफा, पगड़ी, टोपी लगानी पड़ती है। परन्तु स्वास्थ्य की पुस्तकों में साफ लिखा है कि 'पगड़ी-टोपी' लगाने से हानि होती है। प्रकाश और वायु सिर की त्वचा तक अपना असर पहुँचा नहीं पाते हैं। अतः कुछ दिन में नहीं, तो कम से कम, चालीस के ऊपर की आयु होते ही सर के बाल गिरने लगते हैं। कृपया एक बार पड़ोसियों की गंजी खोपड़ियों की कल्पना कीजिये और तब हम कहेंगे कि जनाने ढंग की धोती का रिवाज जब चल जायगा तो पगड़ी और टोपी की आवश्यकता न रहेगी। कोई पगड़ी उतार कर आपका अपमान न कर सकेगा? न रहेगा बाँस न बजेगी बाँसुरी। नाक ही नहीं तो जुकाम का डर क्या? अतः हल्की पतली साड़ी सिर की शोभा भी बढ़ायेगी; हवा और प्रकाश भी त्वचा तक पहुँचेंगे और गंजी खोपड़ियाँ देश में स्वप्न में भी न दिखाई पड़ेंगी। सम्भव है कि लोग विश्वास न करें परन्तु यदि कुछ देर तक एकान्त में साँस ऊपर चढ़ा कर सोचेंगे तो इसी नतीजे पर पहुंचेंगे कि, ठीक है। यही कारण है कि स्त्रियाँ हजारों में एक ही कदाचित् गंजी होती हो। अतः जब पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों का

खोपड़ी गंजी कम होने का यही रहस्य है तो फिर :—

अब बिलम्ब केहि काज; बँधे सेतु उतरै कटक ।

इससे भी बड़ा एक नीति का पद्य सुनिये 'बैताल' कवि कहते हैं :—

मर्द सीस पर नवै मर्द बोली पहिचानै ।
मर्द खिलावै खाय मर्द चिन्ता नहिं मानै ॥
मर्द देय औ' लेय मर्द को मर्द बचावै ।
गाढ़े-सँकरे काम मर्द के मर्दै आवै ॥
पुनि मर्द उनहिं को जानिये दुख-सुख साथी मर्द के ।
'बैताल' कहैं विक्रम सुनो लच्छन हैं ये मर्द के ॥

अब जरा विचार कीजिये। आप मर्द हैं तो क्या इनमें से कोई भी लक्षण आप में हैं ? क्या आप आनन्द से खाने और खिलाने की शक्ति रखते हैं ? क्या 'गाढ़े-सँकरे' किसी के काम आते हैं ? यदि नहीं; तो मर्द न होकर भी यह पोशाक क्यों ? उतारिये। जल्दी उतारिये और पहनिये जनाने ढंग की धोती !

मैं मानता हूँ कि संसार में कोई भी वस्तु हो लाभ भी पहुंचाती है और हानि भी। जनाने ढंग की धोती पहिनने से भी कुछ हानियाँ होंगी परन्तु दो-चार; जैसे—जो सज्जन

मूँछें नहीं रखते हैं वे थोड़ा इस पोशाक में भ्रम पैदा करेंगे। परन्तु भाई साहब, इस ढंग की धोती से हम लोग ऐसे अन्धे नहीं हो जायँगे कि स्त्री-पुरुष में पहिंचान ही न कर सकें। यदि ऐसी सम्भावना हुई भी तो विदेशी कम्पनियाँ किस दिन के लिये हैं? कोई ऐसी मशीन तैयार हो जायगी जिससे नीर-क्षीर विवेचन हो जायगा।

इसके अतिरिक्त बहुत सम्भव है कि कुछ दिन तक पहिले आप हमें देख कर हँसें और हम आप को देखकर। परन्तु भाई साहब—नये काम में तो ऐसा होता ही है। अधिक से अधिक साल दो साल हँसेंगे परन्तु जहाँ हजारों लाभ हों वहाँ ऐसी तुच्छ बातों के लिए काम रोकना कायरपन ही तो होगा! जब फैशन पुराना हो जायगा और सभी में प्रचलित हो जायेगा तो झख-मार कर हँसने की आदत भी छूट जायगी। मूँछ बनवाने की प्रथा को ही देखिये, पहले जब चली थी काफ़ी हँसी उड़ाने वाली प्रथा थी परन्तु आज? बड़े बड़े व्याख्यान-दाता हज़ारों के आलम में व्याख्यान देते हैं परन्तु हम लोग गम्भीर बैठे सुनते रहते हैं। क्या हँसी आती है? सो यह तो फैशन है। चल गया सो चल गया।

वे !

६

दुनिया में आदमी तो अभी हैं।
हम भी आदमी हैं; आप भी आदमी हैं
और न जानें कितने आदमी हैं।
परन्तु कुछ बातें जो हम में हैं, आप में
नहीं हैं और कुछ बातें जो आप में हैं
वे हममें नहीं हैं। लेकिन वे…?

वे कौन थे; क्यों पैदा हुए थे और क्यों मरे; ये बात ऐसी हैं जिन्हें अब प्रकाश में न लाने में ही भलाई है। फिर भी "बैठा बनिया क्या करे, इस कोठी के धान उस कोठी में और उस कोठी के धान इस कोठी में"—सिद्धान्त के अनुसार हम मजबूर हैं। अतः वे कौन थे, इस विषय में हम आज कुछ लिखने की धृष्टता कर रहे हैं।

यह तो निश्चित ही है कि उनका विस्तृत जीवन-चरित्र हम अपने आठवें जन्म में ही कदाचित् लिख सकें, लेकिन लेखक होने के नाते संक्षेप में इस प्रकार समझ लीजिये कि अभी हाल ही में देश की मर्दुम-शुमारी हुई थी। मर्दुम-शुमारी में उनके जैसे आदमी को गिनना तो चार-पाँच बार चाहिये था; परन्तु एक बार भी वे न गिने जायँ, यह असम्भव घटना होगी। अतः निर्विवाद मान लेना चाहिये कि देश की जितने करोड़ की आबादी है, उसी का वे एक अंश थे। जाति पुरुष की, वर्ण श्याम। क्या कीजियेगा, सन्तोष कीजिये। माता-पिता के अभाव में पुत्र का आविर्भाव असम्भव है, अतः माता-पिता तो उनके

निश्चय ही थे, लेकिन नाम हम इस लिए नहीं लिखेंगे कि सन्तान के लिये माता-पिता को कलंकित करना हमारा स्वप्न में भी ध्येय नहीं रहता। अतः नोट कर लीजिये कि उनके पिता का नाम 'परम पिता परमात्मा' और माँ का 'भारत माता' था।

रहन-सहन का ढंग बेढंगा अथवा अति विचित्र कह लीजिये। कहीं बैठते थे तो इस प्रकार कि, आप पीसने वाली चक्की उनकी टाँगों के बीच में आसानी से रख सकते थे और पीसने के लिये कह भी देते तो क्या मजाल कि उन्हें अपनी पोजीशन बदलनी पड़ती। कहीं खड़े होते थे, तो ऐसे, कि आप दूर से देखते, तो यही समझते कि कोई आला नम्बर का उचक्का है। लेटते ऐसे कि, जागृत अवस्था में यदि आँखें न खुली हों और सुप्तावस्था में यदि नाक न बजती हो, तो आप आश्चर्य करने लगते कि इनको लोग अभी तक अन्तिम-संस्कार के लिये क्यों नहीं ले गये!

स्वभाव का तो कहना क्या? जिद्दी ऐसे थे कि जिसके पीछे पड़ गये, तो फिर दुनिया एक तरफ और आप एक तरफ। एक वर्ष गर्मी अधिक पड़ी, तो गर्मी के ही ऊपर झुँझला उठे और तब तक दम न लिया, जब तक गर्मी से बचने का उपाय न सोच लिया। प्रयत्न पर प्रयत्न करते रहे, और अन्त में कुछ ऐसी टिप्पस भिड़ाई कि शादी जो हुई तो ससुर जी शिमला के कारबारी मिले! जब तक जिये प्रति

वर्ष गर्मी में ससुरजी के दर्शन करने जाते रहे। अब आप समझ सकते हैं कि जिसकी ससुराल का सिल-सिला शिमला में हो, उसका भला बेचारी गर्मी क्या कर सकती है ?

क्रोध का हाल यह, कि एक दफे कलकत्ते के हवड़ा पुल पर लगे एक विज्ञापन बोर्ड पर ही बिगड़ उठे। हजारों आदमी प्रति दिन पुल पर से आते-जाते हैं। सभी तो विज्ञापन पढ़ते भी न होंगे। परन्तु आपने पढ़ा और पत्रों में शिकायत भी भेजी। शिकायत छपी तो नहीं; पर एक सम्पादक की जबानी सुनने में आया कि आपने शिकायत इस प्रकार लिखी थी :—

"बड़ी-बड़ी कम्पनियों वाले भी बड़े धोखेबाज होते हैं। हवडा पुल पर एक बड़ी कम्पनी ने लिखा रखा है कि हमारी चाय पीजिये। परन्तु एक दिन मैं दो घण्टे तक खड़ा रहा और कोई एक प्याला भी लेकर न आया। 'पीजिये' कह कर न पिलाना तो असभ्यता है ही, किन्तु भले-मानसों का इस प्रकार समय नष्ट करने का इन कम्पनियों को अधिकार ही क्या ? आशा है, इनसे जनता सावधान रहेगी।"

परोपकारी भी कुछ कम न थे। एक बार एक औषधालय में, जिसके दरवाजे पर 'दवाखाना' लिखा था; आप भीतर घुस गये और वैद्यजी को सलाह देने लगे कि आपने

'दवा खाना' ठीक लिखाया है। लोग दवा खायेंगे; परन्तु अच्छा हो कि समय भी लिखवा दें। अर्थात् दवा खाना सबेरे इतने बजे और शाम को इतने बजे।

धुन के इतने पक्के थे कि, किसी भी यूनिवर्सिटी के दफ्तर से उत्तर न आया, परन्तु आप बराबर पत्र इस आशय के लिखते रहे थे कि:—

"प्रिय महोदय;

मुझे यह जान कर हर्ष है कि आपके यहाँ लड़का जब सब विषयों में पास हो जाता है, तभी सार्टीफिकेट दिया जाता है। परन्तु, अधिक अच्छा हो कि देश के कल्याण के लिए आप अपने यहाँ एक परीक्षा और कायम करें। आज कल लोगों को विद्यार्थियों के चाल-चलन पर सन्देह बहुत होता है। अतः आवश्यक है कि आप सार्टीफिकेट तब तक न दें, जब तक विद्यार्थी 'अग्नि-परीक्षा' में भी पास न हो जाय। मेरी दृष्टि से निबन्ध-रचना के साथ-साथ आप अपने स्कूलों के कोर्स में 'सृष्टि-रचना' को भी कुछ शिक्षा देने की व्यवस्था रखें।"

खास-खास गुणों के सीखने में तो उनकी जबर्दस्त लगन थी ही। जब-तब बड़े पेड़ के पास खड़े होकर बहुमूल्य समय वे केवल इस बात में नष्ट करते कि, कौन-कौन

चिड़िया आकर उस पर बैठती हैं। पहले दूर से उड़ती चिड़िया जब आती, तो अन्दाज लगाते कि यह कौन चिड़िया है और फिर जब बैठ जाती तो देखते कि अनुमान कहाँ तक ठीक निकला। लोगों ने आपसे इस काम का लाभ पूछा तो आपने कहा कि इससे हम अपने भावी जीवन के हित के लिये 'उड़ती चिड़िया' पहिचान लेने का अभ्यास कर रहे हैं।

आतिथ्य-सत्कार में तो उनसे बढ़ कर शायद ही कोई व्यक्ति हो। एक दफे एक सज्जन ने 'भूख लगी है' न कह कर कहा—आज हमारे 'पेट में चूहे कूद रहे हैं, तो आप अपनी पालतू बिल्ली पकड़ लाये और कहा कि इसे पेट में छोड़िये। पहले हमारे घर में चूहे बहुत ऊधम मचाते थे; परन्तु इसने सब का सफाया कर दिया। अब ढूँढ़ने पर भी कहीं एक चूहा न दिखाई पड़ेगा। वे सज्जन आप की बात सुन कर दंग रह गये और फिर कभी इनसे यह नहीं कहा कि हमारे पेट में चूहे कूद रहे हैं।

"अच्छा हो कि, एक ही नगर के सिनेमा वाले अपने यहाँ से जनता को 'Monthly ticket' भी बेंचा करें, यह तो उनकी प्रथम सूझ थी ही; परन्तु सरकार के विषय में भी कौन-कौन बातें हितकर होंगी, यह भी वे सोचते रहते थे। आप ही ने कहा था कि पोस्ट आफिस की टिकटों

की बिक्री एक प्रकार से बढ़ सकती है। अभी डाक खाने वाले एक आने का भी एक टिकट देते हैं और सोलह आने के भी सोलह ही। यदि ये रुपये में १८ टिकट देने लगें और इसी प्रकार अन्य टिकटों के अधिक संख्या में लेने पर रियायत करें, तो बिक्री अधिक हो सकती है। बिक्री अधिक होना कारबार की उन्नति का साधन है। अतः यह बात मानी हुई है कि पोस्ट आफिस का फायदा काफी बढ़ जायगा।

आपने अपने घर में अनेक विचित्र अर्थों की तख्तियाँ भी लगा रखी थीं। जैसे—एक दीवाल पर लिखा था (Beware of friends) मित्रों से सावधान! अब यदि इस प्रकार के वाक्य कोई भी अपने सामने रखे तो मित्र उसे कैसे धोखा दे सकते हैं? आपका अभिप्राय इस वाक्य से यह था कि मित्रों को कर्ज आदि देने में सावधान रहना चाहिये। इसी प्रकार अन्य आदर्श वाक्य भी यत्र-तत्र टँगे थे। किसी पर 'धूम्र-पान निषेध' रहने से मित्रों को सिगरेट आदि देने का खर्च बच जाता था; तो किसी पर 'पान से दाँत गन्दे होते हैं' लिखा रहने से पान का खर्च बच जाता था।

इसी प्रकार उनकी अनेक बातें है जो संसारी पुरुषों के लिए आदर्श हो सकती हैं। परन्तु हमें उनकी दो बात अधिक सत्य जान पड़ीं।

एक तो यह कि उनसे जब कोई पूर्व की ओर के किसी स्थान का पता पूछता, तो वे उसे पश्चिम की ओर बता देते और पश्चिम की ओर के स्थान का पता पूछता, तो पूर्व की ओर बता देते। "जमीन गोल है, इसलिए पूर्व से भी जाकर आदमी पश्चिम में आ जायगा" यह नीयत उनकी न थी। उनका अभिप्राय केवल यह था कि आदमी जहां का इरादा करके चला है, जरूर पहुंचेगा। पता हम न बतायँगे तो दूसरा बता देगा। परन्तु हम गलत इसलिए बता देते हैं कि तब तक कुछ भ्रमण कर लेगा। रेलवे कम्पनी भी मानती है कि, आप जितना ही अधिक सफर करेंगे, बुद्धि बढ़ेगी।

दूसरी बात यह कि शहरों में कई तल्ले के मकान होते हैं। कोई आदमी एक ही तल्ले पर रहता हो, परन्तु यदि कोई उनसे उसका पता पूछे तो-पांचवें तल्ले से कम नहीं बताते थे। इस सम्बन्ध में उनकी सफाई यह थी कि आदमी खोज तो लेगा ही; परन्तु हम अपने आदर्श से क्यों गिरें? हमारा ध्येय तो आदमी को ऊँचे चढ़ाना है, न कि पतन की ओर ले जाना।

चौपट-पुराण

७

पता नहीं हमारी सभ्यता पराकाष्ठा पर पहुँच गई है अथवा फैशन गड़बड़ी फैला रहा है कि आये दिन हमारी आँखें हमें ही धोखा दे जाती हैं। हम जिसे पुरुष समझ लेते हैं कभी-कभी वह अनुसन्धान करने पर स्त्री निकल जाता है और जिसे स्त्री समझ लेते हैं वह पुरुष! स्त्री-पुरुष में पूँछ का भेद होता नहीं और मूंछ आज-कल भेद बतलाने में असमर्थ हो रही है। ऐसी दशा में चौपट-पुराण से कोई क्षीर-नीर-विवेचन का रास्ता निकल आये तो क्या आश्चर्य?

गीता में भगवान् कृष्ण ने अर्जुन से कहा कि,—'हे अर्जुन ! यह आत्मा एक गिन्नी है और यह शरीर एक मनीबेग।" परन्तु; जब उन्होंने शरीर की अधिक व्याख्या न की तो आगे का प्रकरण हम इस प्रकार शुरू करेंगे।

शरीर के तीन खंड हैं—

१—सिर (खोपड़ी)

२—धड़ और—

३—टाँगे।

खोपड़ी-प्रकरण

साड़ी, हैट, गान्धी टोपी, फैल्ट कैप, लखनउवा पल्ला आदि-आदि से ढकी एवं नंगी अनेक खोपड़ियाँ आज हम आप चलते-फिरते देखते ही रहते हैं। इनमें कुछ तो केवल खाल से मढ़ी (गंजी) होती हैं और कुछ बालों से भी ढकी रहती हैं। मनुष्य के शरीर के ऊपर ग्लोब, पपीता, पहाड़ी आलू अथवा तरबूज जैसी ये खोपड़ियाँ अपना

अलग-अलग महत्व रखती हैं। परन्तु हमारे जैसे विद्वानों की दृष्टि में ये अनेक प्रकार की होकर भी केवल तीन ही प्रकार की होती हैं।—

१—साधारण या औंधी खोपड़ियाँ—ये वे खोपड़ियाँ हैं, जो भारत में बहुत बड़ी संख्या में पाई जाती हैं और इनके रखने वाले बे-सिर-पैर की बातें करते हैं।

२—सूझ वाली खोपड़ियाँ—ये खोपड़ियां भारत में बहुत थोड़ी हैं और इनके रखने वाले ऐसी बातें करेंगे कि, सुनने वाले का सिर चकरा जाय!

३—विचित्र खोपड़ियाँ—वे खोपड़ियाँ हैं, जिनके विषय में कुछ कहना ही व्यर्थ है। इनके रखने वाले अकारण ही दूसरे की खोपड़ी चाट जाते हैं।

अब खोपड़ी के सम्बन्ध में लोगों का यह विश्वास भी सुना जाता है कि सभी खोपड़ियों के भीतर एक उपयोगी वस्तु रहती है; जिसे मस्तिष्क कहते हैं। परन्तु अपने राम का विश्वास है कि अब मस्तिष्क कदाचित् ही किसी खोपड़ी में हो। अधिकांश खोपड़ियों में बेल* का गूदा, भूसा, गोबर या इसी प्रकार की अन्य वस्तुयें ही भरी रहती हैं। सभी खोपड़ियों में मस्तिष्क होता तो, भारत को अब तक स्वराज्य न मिल चुका होता?

—'तब ?' मैंने उत्सुकता से प्रश्न किया।

—"तब न पूछो। ऐसा जान पड़ा कि सैंकड़ों घड़े पानी मेरे ऊपर एक साथ पड़ गया' चीखने की आवाज से मैं तो परेशान हो ही रहा था; उधर घर के भीतर भी तहलका मच गया। मुझे यह तो मालूम था कि भाई की मुसीबत में भाई दौड़ता है परन्तु इस बात का पता उसी दिन चला कि बहिन की मुसीबत में बहिन भी दौड़ती है। मेरे कमरे में सबसे पहले तुम्हारी भाभी आईं और मुझ से बोलीं—'तुम दूसरे के घर में भी भले-मानुस की तरह नहीं रह सकते"

"मैं उनसे अपनी भूल का विधवत् वर्णन करना चाहता था। यह भी सम्भव था कि कान पकड़कर भविष्य में ऐसी भूल करने की प्रतिज्ञा भी करता परन्तु अफसोस ! मुझे अवसर न मिला। घर के छोटे-बड़े सभी मेरे कमरे में आकर जमा होने लगे। मैं घबड़ा उठा। बिना किसी से कुछ कहे सुने ही पीछे के दरवाजे से ऐसा भागा कि इस घर में हो आकर दम लिया।

"दो मास बाद तुम्हारी भाभी को मेरा साला छोड़ गया था। मैं घर पर नहीं था इसलिये भेंट नहीं हुई। हाँ, तब से आज तक मैं ससुरात अलबत्ता नहीं गया। चौदह वर्ष बीत गये हैं परन्तु फागुन आते ही मालूम

होता है, कल ही ये सब बातें हुई हैं। कई बार बुलाया गया परन्तु ससुराल कौन-सा मुँह लेकर जाऊँ यह समझ में नहीं आ रहा है ?

—"तो इसमें बेचारे फागुन का क्या दोष ?"

"हाँ फागुन का दोष नहीं है; परन्तु उस ससुराल का दोष तो है ही, जहाँ अन्धेर खाता चल रहा है, न्याय दुहाई दे रहा है और स्वार्थ के आगे अपने दामाद की भी सुनवाई नहीं है।"

—"अरे! अरे! यह आप क्या कह रहे हैं ?"

—"वही जो कहना चाहिये। एक लड़की अपनी खुशी से भेंट को जाती है; अथवा यह कह लो कि जबर-दस्ती हमारे गले मढ़ दी जाती है। परन्तु यदि दूसरी लड़की का हाथ अपनी इच्छा से अथवा भूल से मैंने पकड़ ही लिया तो कौन बड़े कलंक का काम हो गया ?"

इच्छा होते हुए भी मैंने पण्डितजी को कुछ समझाना उचित नहीं समझा। आशीर्वाद लेकर चला आया और ईश्वर का नाम लेकर उसी दिन ससुराल चला गया। मुझे प्रसन्नता है कि मैं किसी दुर्घटना का शिकार नहीं हुआ। पण्डित गीताकिशोर शास्त्री की जैसी कोई भूल मुझसे नहीं हुई अतः मेरी राय है कि फागुन तो क्या जब तबियत हो ससुराल अवश्य जाना चाहिये।

❀

❀ ❀

बीबी का खत

२

मियाँ ने बीबी से कहा था कि हम तुम मिल कर प्रेम-नगर बसायेंगे। लेकिन प्रेम-नगर की स्कीम आइस्क्रीम में छोड़ कर वे परदेश भागे और उस बेचारी को ऐसा भूले कि महीनों बीत जाने पर भी एक खत तक न लिखा। 'बीबी का खत' मियाँ से इन बातों का कारण जानना चाहता है।

मेरे प्रियतम;

आज भी आपका पत्र न मिला। अन्त में वही हुआ, जो मैंने प्रारम्भ में ही कहा था। घर से पाँव निकालते ही दीन-दुनियाँ, सभी आपके हृदय से छू-मन्तर हो गयीं। कहाँ तो हर आठवें दिन पत्र लिख रहे थे, और कहां आठ आठ अट्ठासी, दो महीने अट्ठाइस दिन बीत गये और आपके कर-कमल कागज पर न सरके! क्या यही है प्रेम, और यही है, प्रेमनगर बसाने की स्कीम?

खैर! आप तो वहां चले गये, लेकिन क्या आपको कभी इस बात का भी अनुभव होता है कि जहां प्रेम की परेग ठोंक आया हूँ, उस दीवाल का क्या हाल होगा! अभी दो महीने अट्ठाइस ही दिन हुए हैं, लेकिन मेरी समझ में तो इतने ही दिनों में कितने युग हो गये। ऐसा जान पड़ता है कि उम्र ही समाप्त हो गयी। जब आप यहां रहते थे तभी दिन पहाड़-सा कटता था, परन्तु यह तो विश्वास था कि रात नदी की तरह बह जायेगी; और

अब तो रात भी पहाड़ ही है, तब दिन क्या हो गया होगा, कौन बताये ! जिस दिन से गये, रोते-रोते दोनों आंखें सावन-भादों बन गयीं और आंसुओं का प्रवाह वैसे ही जारी रहता है, जैसे बाढ़ में गङ्गा नदी। न जाने, शरीर में कौन रोग लग गया है कि न दिन चैन न रात। इन जाड़े के दिनों में भी इच्छा होती है कि कपड़े खोल कर रख दूँ। एक तो ऐसे ही चमड़ा हाड़ों के ऊपर रह गया है, उस पर हाड़ों के भीतर जैसे कोई भट्टी सुलगा रहा हो ! बिस्तर पर कभी लेट गयी तब तो और भी तपिश बढ़ जाती है। डर लगा रहता है कि कहीं सुलग न जाऊँ और मेरे साथ आपकी घर-गृहस्थी भी न जल जाय, इसलिये जाग कर ही आजकल सबेरा कर देती हूँ।

मैं सोचती हूँ कि आखिर आप इतने निष्ठुर हो कैसे गये ? अपनी जिस रानी के लिये घर रहने पर दिन में पचास बार बहाने निकाल-निकाल कर दरवाजे से भीतर आते थे; बड़े-बूढ़ों की आंखों धूल झोंककर कभी शरीर से शरीर रगड़ कर निकलते थे, कभी धोती का खूँट पकड़ कर खींच लेते थे और कभी पैर से पैरों की उङ्गलियां कुचल डालते थे, उसी को आज इस तरह कैसे भूले ? इस तरह तो महाजन को कर्जा, कपड़ा देनेवालों को दर्जी और एहसान करने वालों को शायद बङ्गाली बनर्जी और चटर्जी भी न भूलते होंगे।

लाख भूलने पर भी याद आ ही जाती है आपके हृदय की वह कोमलता, जो नदी-नाव के संयोग के समय थी। मैं आपके घर पहली बार आयी थी। मुझे प्रीति की रीति का कोई ज्ञान न था। परन्तु वह आप ही हैं, जिन्होंने मुझे प्रेम के थप्पड़ों से ठोंक-पीट कर वैद्यराज बनाया। मधुर-मिलन की प्रथम रात्रि की बात को ही लीजिये। आप आशा कर रहे थे कि मैं घर आयी हूँ तो फूलों से चुन-चुन कर बिछायी सेज मिलेगी, परन्तु याद होगा, आपको मिला था शयनागार में बिना बिस्तर का टूटा तख्त। फिर भी आपने क्रोध नहीं किया और जब मैं ठेल-ठाल कर आपके सामने लायी गयी तो आपने मुजरिम को बेकसूर की ही निगाहों से देखा था। मैं संकोच से सिकुड़ती कोने में सटी जा रही थी और आप प्रेम-भरी, चाह-भरी चितवन से मेरे हित की बातें सोच रहे थे। आप ही ने बतलाया था कि कोने में कीड़े-मकोड़े होते हैं अतः कोने से अलग होकर खड़े होने में ही भलाई है।

कहाँ तक कहूँ, उस दिन मुझे आपकी बतलाई हितकी बातें कड़वी लग रही थीं और जाड़ा खाकर भी हृदय में ज्ञान नहीं उत्पन्न हो रहा था। परन्तु आपका करुण हृदय पसीजने से न चूका। उठे, पास तक आये, हाथ

पकड़ कर घसीटा और न चलने पर पैरों पड़-पड़ कर रास्ते पर लाये।

खैर, ये भी हुई बीती बातें। गड़े मुर्दे उखाड़ने से अब दिल का कब्रिस्तान खुद जायगा। परन्तु स्मरण कीजिये उन दिनों को, जब मैं लवङ्ग-लता वृक्ष से लिपटने के लिये खुद बढ़ी थी; और फलतः खुद हरुवे-हरुवे आपके गरुते लगने लगी थी। अब जब उङ्गली पकड़ते-पकड़ते, पहुंचा पकड़ने के मैं काबिल हुई, तो आपको न जाने किस नफा-नुकसान का बोध हुआ कि साम्प्रदायिक दङ्गे के दिनों के दूकानदारों की तरह एकाएक दूकान खुली छोड़ कर छू-मन्तर हो गये ?

उस दिन पड़ोस की ठकुराइन कह रही थीं कि एक थे रसिया बालम। रात में बीबी ने कहा—थोड़ा खिसक चलिये, तो खिसक गये। स्थान पर्याप्त न पाकर बीबी ने कहीं दूसरी बार फिर कहा थोड़ा और खिसकिये तो आप चारपाई से नीचे उतर कर चलते बने ? बीबी ने समझा शायद किसी क्षणिक आवश्यकता से कहीं जा रहे होंगे, अतः बुलाया नहीं, और आप रात ही रात स्टेशन पर पहुँच कर कलकत्ते चले गये ! कलकत्ते से आपने बीबी को लिखा कि, और खिसक जाऊँ कि काम चल जायगा ?

मेरे देवता ! मैंने तो कभी ऐसी बात भी नहीं कही। आवश्यकता पड़ी है तो हाँ, मैं अलबत्ता खिसक गयी हूँ। तब कृपया बतलाइये कि आप भी उन रसीले बालम की भाँति कलकत्ते क्यों खिसक गये ?

पत्र बढ़ रहा है लेकिन आप ही बताइये कि उपाय ही क्या है ? दुख तो परम्परा से रो-रोकर ही कटा है। दो महीने अट्ठाइस दिन का दुःख इन थोड़े से पन्नों ही में कैसे आ जाय ? दिल के जिस गुबार के लिये दस-पाँच रीम कागज भी कम होगा उसके लिये दस-पाँच पन्ने भी न लिखूँ तो तबियत हल्की कैसे होगी ? आपको पढ़ने का अवकाश न हो तो बिना पढ़े ही रख देना, परन्तु मैं लिखने से बाज नहीं आ सकती।

प्रियतम ! इस समय मेरे आगे जो पुस्तक रखी है, भजनों की है। खुली है, इसलिये इसमें जो लाइन मेरी आँखों को खटकती है वह है 'सुरति मोरी काहे बिसराई राम।' इस लाइन को पढ़कर मुझे ऐसा जान पड़ता है, मेरा दुःख नया नहीं है। सनातन से ही पुरुष-समाज स्त्री-समाज के ऊपर अत्याचार करता रहा है। पहले तो प्रेम का ढँकोसला दिखाकर ठगता है, और जब कुछ हाथ लग जाता है तो रफूचक्कर होता है। मेरा विश्वास है कि प्रेम कर के पीठ दिखाना धर्म-शास्त्र और काम-शास्त्र, किसी में उचित नहीं कहा गया है।

डालिये, बिना किसी प्रकार का मन्त्र पढ़े 'स्वाहा' हो जायगा। खाने वाली वस्तुएँ तो हजम ही हो जाती हैं, परन्तु कभी-कभी बड़े-बड़े राष्ट्र तक इसी पेट में गड़-गप्प हो जाते हैं। पेट कभी-कभी चूहों के डण्ड पेलने का अड्डा भी बन जाता है। पेट के पालने के लिये दूसरों को पेट खोल कर दिखाना पड़ता है। दो बड़ी बातें पेट के विषय में ये हैं कि प्रथम तो किसी के पेट में दाढ़ी और किसी के पेट में पाँव भी होते हैं और दूसरी बात यह कि पेट होता सब के भले ही हो, परन्तु रहता है स्त्रियों के ही।

कमर—कमर न होती तो धोती, पायजामा आदि-आदि कैसे पहिने जाते? धोती पायजामा न पहने जाते तो अनर्थ ही तो हो जाता आदमी के लिए विद्वान् कहते हैं कि वह आदतों का एक बण्डल है। अगर बण्डल बँधा न रहता तो छूट ही तो जाता? नाचने के लिए एवं धड़ और टाँगों के जोड़ने के लिए कमर का अपना काम अपने दर्जे का लाजवाब ही है।

हाथ—पाणि-ग्रहण की रस्म पूरी करने, अफसोस के समय मलने, दूसरों के ऊपर चलाने, पत्थर के नीचे दबाने, लाल करने, पीले करने, आदि-आदि कार्य हाथ बहुत अच्छी तरह करते हैं। किसी के पीछे पड़ना हो, तो इनको

धो लेना और किसी को पीटना हो तो पहले से खुजला लेना परम आवश्यक है। दो बड़े उपयोग हाथों के ये है।—

१—दुनिया को ठगना हो, तो बगल में 'कतरनी' और हाथ में 'सुमिरिनी' लेने से काम अच्छा चलता है।

२—हाथ ही में कलाई होती है; जिसे मलाई खाकर पकड़ने से बड़े ऊँचे दर्जे का आनन्द आता है।

टाँग प्रकरण

टाँगें—टांगें अर्थात् पांव चोरों को छोड़ कर और सबके होते हैं। कुछ लोगों की टांगों की शक्ल 'दीपशलाका' की तरह, कुछ की मिर्जापुरी डण्डे की तरह, कुछ की कण्डा की तरह और कुछ की ऐसी होती है कि जिसे वास्तव में टांग कहना चाहिये। जेल में बेड़ियाँ डालने, दूसरे के कामों में अड़ाने, फुटबाल खेलने और ट्राम एवं बस के स्टेशनों तक ले जाने में ये काफी सहायक होती हैं परन्तु चढ़ाकर लेटने में आनन्द और पसार कर सोने से नींद अच्छी आती है। हां, इतना ध्यान रखना पड़ेगा कि, पसारने में 'चादर' के बाहर न जायँ। दूसरों के पांव पकड़ने से कभी-कभी रोजी मिल जाती है और फूंक-फूंककर पांव रखने से संसार में कल्याण होता है।

स्त्री-पुरुष की पहचिान

शरीर का प्रकरण समाप्त हो जाने पर स्त्री पुरुष का भेद निकालना कठिन नहीं है। शरीर न होता तब तो शायद सभी लोग निराकार परमात्मा ही होते; परन्तु शरीर हुआ, तो आत्मा की जरूरत पड़ी। अतः यदि स्त्री-पुरुष की पहिचान में गड़बड़ी हो, तो आप गड़बड़ी करने वाले 'शरीर' से पूछिये कि आप पुरुष हैं कि स्त्री? तरीक़ा यह है कि, यदि दो चपत जड़ दे, तब तो समझ लीजिये कि पुरुष है और यदि चीखने-चिल्लाने लगे, तो समझ लीजिये कि स्त्री है। यदि हमारी बताई कसौटी काम न दे, तो सब लक्षण होते हुए भी स्त्री को पुरुष और पुरुष को स्त्री समझिये; क्योंकि दुनियां में पाप-पुण्य, सत्य-मिथ्या और रोग-भोग कर्मानुसार ही मिलते हैं। यदि ऐसा न होता, तो, 'लक्ष्मी बाई' को सभी जनाना समझते और लखनऊ के नवाबों को 'मर्दाना'; पर ऐसा सिर्फ कर्म से ही नहीं हुआ—यानी लक्ष्मी बाई मर्दाना और नवाब जनाना ही साहित्य-जगत् में चिर मशहूर हैं, रहेंगे भी। बस, संक्षेप में यही पहिचान-पद्धति है।

❀

❀ ❀

ठिठोली

८

१

अनमोल बोल

दाढ़ी-मूछ में खिजाब लगाकर आप अपने मुंह में स्वयं कालिख पोतते हैं। अतः कोई दूसरा दोषी नहीं है।

❋ ❋ ❋

प्रतिभा, यौवन और बम इन तीनों में से जब कोई फूटते हैं, तो पास-पड़ोस वालों का ध्यान अवश्य आकर्षित करते हैं।

❋ ❋ ❋

संसार दुःख-सागर है। इसे आप 'सुख-सागर' की एक पुस्तक खरीद कर कदापि परिवर्तित नहीं कर सकते।

❋ ❋ ❋

बिदा हुए अतिथि और फिदा हुए आशिक दोनों का अन्तिम स्वर एक होता है। अर्थात् हमें भूल न जाना।

❋ ❋ ❋

कभी-कभी कुएँ-तालाब में डूब मरने वाले व्यक्ति ऐसे होते हैं कि जिनके डूबने के लिये चुल्लूभर पानी ही काफी था; परन्तु फजूल उतने जलको खराब किया।

❀ ❀ ❀

'नौकरों को आसमान पर न चढ़ाओ' यह नीति स्पष्ट कहती है कि नौकरों के साथ हवाई जहाज पर यात्रा न करो।

❀ ❀ ❀

दूसरों को मिठाई न खिलाकर खटाई खिलाइये। यही एक साधन है, जिससे आप बहुतों के दाँत आसानी से खट्टे कर सकते हैं।

❀ ❀ ❀

यदि किसी काम में सफलता प्राप्त करना चाहते हो तो श्रीगणेश करने से पहले यह देख लो कि पास पड़ोस में कोई गोबर-गणेश तो नहीं है।

❀ ❀ ❀

चित्त शुद्ध नहीं है तो स्वामी विशुद्धानन्द बनने की चेष्टा न करो। विवेक नहीं है तो स्वामी विवेकानन्द कभी न हो सकोगे। यह असम्भव है कि केवल तिलक लगा लेने से दूसरे आपकी बात को लोकमान्य तिलक की बात की तरह सुनें।

संसार असार है इसलिये पाँव पसार कर न बैठो। ध्यान रहे, न जानें क्या-क्या तो करना ही है अन्त में मरना भी है।

❀ ❀ ❀

"कुमार—सम्भव" लिखने वाले भी कभी असम्भव को सम्भव नहीं कर सके हैं इसका हमेशा विश्वास रखो।

❀ ❀ ❀

किसी से मनमुटाव बढ़ जाय तो उसको आचरण से घटाओ। 'प्रेम-सागर' खरीद कर भेंट करने का इरादा बुरा है।

❀ ❀ ❀

खाकर विश्राम करो तो थोड़ी देर विश्राम-सागर अवश्य पढ़ो।

❀ ❀ ❀

आये दिन विरोधियों से सावधान रहो। यह मत ख्याल करो कि अभी आस्तीन नहीं समेट रहे हैं तो क्या लड़ेंगे। यह 'हाफ शर्ट' (आधी बाँह की कमीज) का युग है। इस युग में आस्तीन समेटने का मौका आपको न मिलेगा।

संसार में आपको दोनों प्रकार के व्यक्ति मिलेंगे। कुछ आपको सभापति बनाने की फिराक में होंगे और कुछ बेवकूफ।

* * *

अभिनेत्रियों के लगे नेह और फूस के बने गेह पर कभी भरोसा न करो। दोनों ही अधिक टिकाऊ नहीं होते हैं।

* * *

संसार असार है। अतः न जानें कितने आदमी मरते ही रहते हैं; परन्तु धन्य हैं वे जो किसी पर मरते हैं।

* * *

बिधुरों के आगे अपने दुख की चर्चा न कीजिये; क्योंकि उन्हें अपने ही दुख से फुरसत नहीं है। अतः आपकी कोई सहायता न कर सकेंगे।

? ? ?

सागर पार

अहा ! हम ग्रेजुएट स्वच्छन्द, विश्व का एक रूप साकार ।
समय का कैसा परिवर्तन, पा रहे यह रूखा सत्कार ॥
टूट कर हृद्तंत्री के तार, सिखाते हमको लोकाचार ।
किन्तु फिर भी हैं कैसे वाध्य, कार बिन हो जाते बेकार ॥
पेट पटना से डाउन-अप, देख अगणित ट्रेनों की छूट ।
उठा कर सोडा बोतल एक, जमाने लगे घूंट पर घूंट ॥
प्रात की प्याला भर ही चाय, मंजु ओंठों को लेती चूम ।
बिस्कुटों की टिकियाँ दो चार, मचाती जीवन में नित धूम ॥
सुखी-जीवन का साज सिंगार, धधकता धूमिल लोल सिगार ।
सफाचट आनन-कानन बीच, ले रहा स्वजनों की मनुहार ॥
सजनि के मधुर मिलन की चाह, मनोहर स्वर्णिम् सन्ध्याकाल ।
कहां जाना अनन्त की ओर, कहां ऐसी मस्तानी चाल ॥
हृदय में जलती है पंचाग्नि, कहो फिर कैसे पायें चैन ।
भाड़ में जाये मन्द समीर, खोल दो यार एलक्ट्रिक फैन ॥
जान कर भी उर के सब भाव, अरे चुप क्यों मेरे सरकार !
जप रहा हूँ प्रिय तेरा नाम, बुलाओगे कब सागर पार ?

अपटू-डेट साखी

'कबिरा' कुरसो काठ की; नहीं राज को छत्र ।
लिखा लिखाया छापिले; बन्द होत है पत्र ॥ १ ॥

छपी पत्रिका देखिकै; दिहेसि 'कबीरा' रोय ।
लिखा आपना छाँड़ि कै; मैटर गया न कोय ॥ २ ॥

कैंची तो 'कालम' भ्रमै; पेन हेड़िंग के माहिं ।
दास 'कबीरा' कह गये; यह सम्पादन नाहिं ॥ ३ ॥

'कबिरा' घूमै घात में; लिये 'पारकर' हाथ ।
गरम टिप्पणी जो लिखै; चलै हमारे साथ ॥ ४ ॥

तू मत जाने बावरे; मेरा है अखबार ।
मैटर-मीटर रात दिन; साहेब रहा निहार ॥ ५ ॥

'कबिरा' गर्ब न कीजिये; साहेब के कर प्रेस ।
ना जानौ कब भेज दे; कैसा लिख संदेस ॥ ६ ॥

ज्यों तिरिया पीहर बसै; सुरति रहै पिय माँहि ।
सम्पादक 'इकजैक्ट' यों; 'ऐक्ट' बिसारै नाँहि ॥ ७ ॥

कबिरा नौका कागजी; बहुत जतन करि खेय ।
'ऐक्ट-रिवर' की भँवर परि; 'डिफीकल्ट टू सेव' ॥ ८ ॥

'कबिरा' तवै न चेतिया; पत्र खड्ग की धार ।
अब चेते क्या भया; साहेब करी पुकार ॥ ६ ॥

लिखने को तो सब लिखैं; लिखि लिखि रहे सजाय ।
'मैटर' सोइ सराहिये; साहेब चक्कर खाय ॥ १० ॥

'पत्र निकारौ' सब कहैं; मोहिं अँदेसा और ।
साहेब सों पटती नहीं; पहुंचेंगे केहि ठौर ॥ ११ ॥

जो तोको काँटा बुवै; ताहि बोय तू फूल ।
है माकूल उसूल पै; अब 'कबीर' की भूल ॥ १२ ॥

सजी सजाई पत्रिका; कविता-लेख पचास ।
विज्ञापन कम देखि कै; भये 'कबीर' उदास ॥ १३ ॥

ऐसा कोई ना मिला; सम्पादक सिरमौर ।
सम्मति नीकी दै चलै; मैटर करै न गौर ॥ १४ ॥

कला न बाड़ी ऊपजै; कला न हाट बिकाय ।
गला दबावै काव्य का; कलाकार बनि जाय ॥ १५ ॥

भूला भूला डोलई; यह नहिं करै बिचार ।
साहेब को भूला जहाँ; बन्द हुआ अखबार ॥ १६ ॥

साहेब मेरा बानिया; आठ पहर हुसियार ।
'ऐक्ट' बाँट लै ठाठ से; तौले सब अखबार ॥ १७ ॥

दो साँचे, दो काँच के; नैना कीन्हें चारि ।
कूकर बनि बन्दा फिरै; 'सरविस' बनी बिलारि ॥ १८ ॥

हम जाना तुम्हरे हिये; धधकै सोहित आगि ।
कलम-सुई से तुम रहे; पेट गुदरिया तागि ॥ १९ ॥

चाव-भाव हिरदे नही; कविता करे बेहद ।
बृथा 'कबीरा' संग्रहै; 'टलमल' खटमल सब्द ॥ २० ॥

खाली प्याला लै फिरै; नाम धरावै कव्बि ।
'कबिरा' चाहै शैम्पियन; क्या देखै तेरी छव्बि ॥ २१ ॥

कवि-सम्मेलन रात दिन; जाके उद्यम येह ।
कह 'कबीर'ता कबिहिं लखि; हमरी परचै देह ॥ २२ ॥

'कबिरा' हँसना दूर करु; रोने से करु प्रीत ।
कसक-वेदना है नहीं, कैसे लिक्खै गीत ॥ २३ ॥

दिव्य-दोहावली

'रहिमन' अब वे कबित कहँ; जिनके अरथ गँभीर ।
पत्रन बिच-बिच देखियतु; टलमल खटमल कीर ॥ १ ॥

पूत पराये कब करैं; रहिमन पूरी आस ।
बिना आपने पत्र के; मिटती कबहुं छपास ? ॥ २ ॥

रहिमन थोरो करि बड़े; लहैं बड़ाई खाट ।
कौन कहै गहमरी को; उपन्यास सम्राट ॥ ३ ॥

कहु रहीम कैसे निभैं; खड़ी पड़ी को संग ।
याकी मेख समास की; फारति वाको अंग ॥ ४ ॥

कप में चाय भराय कै, बिस्कुट देहु छुड़ाय ।
'रहिमन' लोने अधर को; चहियतु यही सजाय ॥ ५ ॥

'रहिमन' अती न कीजिये; पाय प्रेस-अखबार।
को जाने, कै सहस, कब; माँगि लेय सरकार ॥ ६ ॥

'रहिमन' मारग प्रेस का; मत मति-हीन मंझाव।
भवसागर कोउ पार भा; चढ़ि कागद की नाव ॥ ७ ॥

'रहिमन' लघु कवि ही भले; छिनु-छिनु आवहि डाक।
कविवर सब नकफूसरे; घरहो सुरकत नाक ॥ ८ ॥

कोमल कान्त पदावली; कविता मँह भरि लेय।
ज्यों 'रहीम' आटा लगै; त्यों मृदंग सुर देय ॥ ९ ॥

काह पत्रिका दुट पुँजी; नाम छपे से काज।
'रहिमन' भूख बुझाइये; कैसहु मिले अनाज ॥ १० ॥

कविवर कहँ सब हो लखैं; कवि कँह लखै न कोय।
जो 'रहीम' कवि कहँ लखै; मैटर कस कम होय ॥ ११ ॥

'रहिमन' चुप कैसे रहै; जाके रोग छपास।
बेहना को कामै यही; ओटा करै कपास ॥ १२ ॥

'रहिमन' यक दिन वे रहे; 'सेख-चिली' थे सेख।
वायु जु ऐसी बह गई; बैठे छाँटत लेख ॥ १३ ॥

भाव-अरथ समुझै नहीं; छापत छाया छन्द।
मानहुँ टेरत विटप चढ़ि; मो सम को मति मन्द ॥ १४ ॥

को 'रहीम' पर द्वार पै; करन भटैती जाय।
सम्पति के सब जात हैं; विपति सबहिं लै जाय ॥ १५ ॥

यों ' रहीम ' सुख होत है; छपत देखि निज पत्र ।
ज्यों गरीब के पूत को; पाय राज को छत्र ॥ १६ ॥

'रहिमन' बिच-बिच लेख के; भले सजायो ब्लाक्स ।
जानि परै ढलने लगीं; हिन्दुस्तानी क्लाक्स ॥ १७ ॥

लिखि फारै फिरि फिरि लिखे; कहु 'रहीम' केहि काज ।
जो करि 'तुलसी' अमर भे; सो चाहत कविराज ॥ १८ ॥

' रहिमन ' चुप ह्वै बैठिये; लिखे लेख लखि ढेर ।
जब नीके दिन आइहैं; छपत न लगिहै बेर ॥ १९ ॥

' रहिमन ' कोऊ का करै; हड़पहु लेख हजार ।
जो पति राखन हार है; मैटर छापन हार ॥ २० ॥

जेहि ' रहिम ' रुपया दयो; कहेउ यथारथ जौन ।
ताहि आर्टिकिल देन की; रही बात अब कौन ॥ २१ ॥

'रहिमन' कविता निज लिखी; घर ही राखो गोय ।
फारि फेंकिहैं लोग सब; छापि न देहैं कोय ॥ २२ ॥

पथिक जाहु घर लौटि अब; रहहु खाय कै सोइ ।
'रहिमन' 'कवि'मारग मिलै; का फिरि कारज होइ ॥ २३ ॥

पत्र एडीटर, भांड़, कवि; साहित्यिक लंगूर ।
'रहिमन' इन्हैं संभारिए; बदनामी नहीं दूर ॥ २४ ॥

जौ 'रहीम' रहिहैं यही; सब सम्पादक लोग ।
बढ़ि ' हैजा ' हू ते कबौं; होइहै कविता-रोग ॥ २५ ॥

गड़बड़ रामायण

जय गजबदन षड़ानन माता।
बरसत मेंह देहु मोहि छाता॥
वेद बिहित सम्मत सबही का।
कारबार बस केवल घी का॥
परहित लागि तजै जो देही।
स्वर्ग जाय सो चारि बजे ही॥
मातु पिता भ्राता हितकारी।
ये सब ताड़न के अधिकारी॥
एकहि धर्म एक ब्रत नेमा।
काम छाँड़ि सब जायँ सिनेमा॥
सब कर मत खग-नायक एहा।
बसै न अधिक ससुर के गेहा॥
सिव,अज,सुक, सनकादिक नारद।
सम्मेलन के रहे 'विशारद'॥
सबकी निन्दा जे जड़ करहीं।
कबहुं तड़ातड़ निहचै परहीं॥
नीति निपुन सोइ परम सयाना।
नित उठि भंग दूधिया छाना॥
यहि ते अधिक धर्म नहिं दूजा।
फागुन दान करै खरबूजा॥

समय जानि गुरु आयसु पाई ।
बाइस्कोप चले दोउ भाई ॥
विद्या-विनय विवेक बड़ाई ।
भूलि जाहु जब होय लड़ाई ॥
सोइ कवि-कोविद सोइ रन धीरा ।
बेंचइ धनिया, मिरचा, जीरा ॥
नाथ मोहि निज सेवक जानी ।
देहु मँगाय बरफ कर पानी ॥
वारिज-लोचन मोचत वारी ।
मलि-मलि धोवत लोटा थारी ॥
बरनत सकल सुकवि सकुचाहीं ।
लम्बा कुरता आधी बांहीं ॥
कहेउ कृपालु भानु-कुल नाथा ।
कपड़ा नापि देहु दस हाथा ॥
जाति-पांति धन धरम बड़ाई ।
भूमि खोदिके देहु गड़ाई ॥
यहि विधि मुनिवर भवन दिखाये ।
पाँच-सात फिरि लेख लिखाये ॥
सुनहु देव रघुवीर कृपाला ।
होइय अब कछु गड़बड़ झाला ॥
अस कहि चरन परेउ अकुलाई ।
नाथ निकासहु दियासलाई ॥

मधुशाला

पटक चायका प्याला जब से पीली थी ठण्ढी हाला।
मन में आया उसी समय से कभी लिखूंगा मधुशाला॥
झाड़ू लेकर साफ करेगा ग्वाला मकड़ी का जाला।
कम्पोजीटर टाइप से कम्पोज करेंगे मधुशाला॥
छुट्टी में भी नहीं लगेगा कभी प्रेस में अब ताला।
दो दो फर्मे छपा करेगी यही हमारी मधुशाला॥
जिस दिन कोरे कागज ऊपर छप जायेगा कुछ काला।
सब को चौपट कर देगी बस उसी दिवस यह मधुशाला॥
बीच सड़क पर सुन न पड़ेगा दो पैसा गड़बड़ झाला।
हाकर चाकर मौज करेंगे इसीलिये यह मधुशाला॥
ट्रामकार में चढ़ी मिलेगी अगर कहीं कोई बाला।
आते नीचे देख पड़ेगी उसे हमारी मधुशाला॥
पण्डित, पण्डे और पुरोहित व्यर्थ जपेंगे क्यों माला।
अगर बतायी किसी दोस्त ने उन्हें हमारी मधुशाला।
पुस्तकालयों के भीतर भी रोब जमेगा अब आला।
अलमारी में रखी मिलेगी चौबिस घण्टे मधुशाला॥
दीन किसानों की खेती को नष्ट करेगा जब पाला।
सब को रोटी दे आयेगी यही हमारी मधुशाला॥
कभी पिता जी अगर कहेंगे अन्न नहीं घर में लाला।
हाथ पकड़ कर ले जाऊँगा जहाँ हमारी मधुशाला॥
जब हाला में डुबा डुबा कर जायेगा शीशा ढाला।
टाइप टाइप में थिरकेगी यही हमारी मधुशाला॥

भाभी-महिमा

श्री 'चेअर' के सामुहे, 'टेबुल' सुखद लगाय ।
कहहुं आज भाभी-कथा, सुनहु सन्त चितलाय ॥

धन्य ससुर जिन भाई व्याहा ।
धन्य घरी जब भयउ उछाहा ॥
धन्य धन्य साले हितकारी ।
धन्य सरहजैं परम पियारी ॥
धन्य गेह जहँ भाभी रहही ।
धन्य देह जेहि भाभी चहही ॥
धन्य पुरुष आपन बड़ भाई ।
जासु कृपा भाभी घर आई ॥
धन्य भतीजी, धन्य भतीजा ।
जिनके मामा के हम जीजा ॥
धन्य सकल भाभी के जेवर ।
सोभा निरखि सकैं नहिं देवर ॥
धन्य-धन्य भाभी की साड़ी ।
धोये कबहुं न निकरै माड़ी ॥
धनि, 'पिन-इस्नो-पोनेड' ते सब ।
भाभी जिनहिं लगावै जबतब ॥

दर्पन-कंघी-पाउडर, सकल वस्तु उत्पन्नि ।
भाभी के हित आवही, बार-बार धनि-धन्नि ॥

औरहु सुनहु सन्त-जन जेते।
आगे अधिक हवाला देते॥
भाभी सब्द सुना नहिं काना।
स्रवन पुराने सूप समाना॥
नयनन भाभी दरस न कीन्हा।
लोचन दोउ खोउ जनु दीन्हा॥
ते सिर कटु तुम्बर सम तूला॥
जे न नमत भाभी-पद मूला॥
जो न करहि भाभी गुन गाना।
जीह सो दादुर जीह समाना॥
कुलिश कठोर निठुर सोइ छाती।
भाभी वचन न सुनि हरसाती॥
और कहाँतक करौं बड़ाई।
यौरुप महँ छिड़ि गई लड़ाई॥
तेहिते यतना जानहु नीके।
भाभी बिन पकवानहुं फीके॥

भले-बुरे सब सन्त-जन, सुनहु खोलि कै कान।
भाभी-महिमा-हित कछू, खोजहु एक पुरान॥

चारि वेद पर पढ़ा न कोई।
तब सब चरचा निसफल होई॥
यहिते कछु इतिहासइ भाखौं।
डूबति इज्जति आपनि राखौं॥

घर सुधरहिं भल घरनी पाई।
खर सुधरहिं दस डण्डा खाई॥
सठ सुधरहिं सत्संगति पाई।
मठ सुधरहिं जब घुसहिं लुगाई॥
यहि विधि निहचै जानो भाई।
देवर सुधरहिं भाभी पाई॥
जीवनलाभ लखन कस पावा।
भाभी के संग विपिन मँझावा॥
भरत रहे जैसे के तैसे।
पढ़ि रामायण देखहु कैसे?॥
अधिक कहाँ लग कहौं बखानी।
मुंहमा भरि-भरि आवत पानी॥

तेहिते या संक्षेप महँ, विस्तृत करौ विचार।
देवर-भाभी प्रेम का, जग महँ करौ प्रचार॥

प्रात धूप जब आवै थोरी।
भाभी सों कहियो कर जोरी॥
जय-जय-जय निज पिता किशोरी।
जय भाई-मुख-चन्द चकोरी॥
मोर मनोरथ जानहु नीके।
बसहु हिये मोरेहु जस पी के॥
जिन के अस मति सहज न आई।
तिनके धरिगै गठिया-बाई॥

यहि सन जो चाहहु कल्याना।
सुजस सुमति सुभगति सुखनाना॥
तौ समुझहु भाभी सुख-दानी।
गहहु तिजोरी-चाभी जानी॥
कवि-कोविद गावहिं अस नीती।
कलि महँ तारै भाभी-प्रीती॥
बाकी सब आडम्बर जानौ।
पूड़ी देखि न सत्तू मानौ॥

औरहु एक गुपत मत, सबहिं कहौं कर जोरि।
सुनतहि जेहिका सन्त-जन, देहैं खीस निपोरि॥

जे भाभी सन इरषा करहीं।
तिन के पुन्नि बैल नित चरहीं॥
बवा सो लुनिय लहिय सो दीन्हा।
यह तो कवि तुलसी लिखि लीन्हा॥
पै जो सज्जन गुनिहैं मन महँ।
झूठी अब 'चालिस' के सन महँ॥
तेहिते सब कहँ गोली मारो।
सेवा भाभी की चित धारो॥
जब-जब पूजा हृदय हिलोरै।
बाढ़ै भक्ति देवतन ओरै॥
तब-तब भाभी का करि ध्याना।
हृदयकेर मेटहु अज्ञाना॥

अवसि प्राप्त होइहैं चारिउ फल।
सेव-सन्तरा—कद्दू—कटहल ॥
सोइ पण्डित सोइ पारखी, सोई सन्त सुजान।
भाभी केरे प्रेम-हित, करहिं जान कुरबान॥

गृहस्थ-गान

लो, नहीं मानतीं, तो सुन लो,
मैं भी गाता हूँ गान प्रिये।
तुम हरा लहलहा खेत और,
मैं ऊसर-सा मैदान प्रिये॥
तुम इन्द्र लोक की परी कहाँ,
मैं निपट गँवार किसान प्रिये।
तुम फर्स्ट क्वालिटी सिल्क और,
मैं मोटा खद्दर थान प्रिये॥
तुम सिद्ध-हस्त का अग्रलेख मैं,
ग़लत लिखा मजमून प्रिये।
तुम कला-पूर्ण द्रष्टव्य चित्र,
मैं हंसने का कार्टून प्रिये॥
तुम सखी देश इँगलैण्ड और,
मैं दुखिया हिन्दुस्तान प्रिये।
तुम सजा हुआ रायल होटल,
मैं देहाती दूकान प्रिये॥

बस अधिक बहस अब कौन करे,
तुम गेहूँ तो मैं धान प्रिये।
तुम बृजभाषा का मधुर भजन,
मैं नीरस 'टलमल गान' प्रिये॥

मुझे मालूम न था

बबुअई जिन्नत का मजा, कुछ मुझे मालूम न था।
कौन सी शै है सिनेमा, मुझे मालूम न था॥
दरे हाउस पै खड़ी, भीड़ को सुनते पाया।
कौन गाता था, मगर, यह मुझे मालूम न था॥
कानों में बिलाशक पड़ी, हर गुट्ट की कानाफूसी।
बिक गया 'चवन्नी-टिकट', यह मुझे मालूम न था॥
घण्टी के बजते तो सभी, बत्तियाँ बुझते देखी।
हाल अँधेरे का मगर, कुछ मुझे मालूम न था॥
गाता था कोई और मगर, काट के बोला खटमल।
'आप आयेंगे सिनेमा, मुझे मालूम न था॥

कहीं न कहीं

घर में बन में यदि ईश्वर है,
हम पाप करेंगे कहीं न कहीं।
धन बाप का हाथ लगा कुछ भी,
हम साफ करेंगे कहीं न कहीं॥